ललद्यद मेरी दृष्टि में

बिमला रैणा

ललद्यद मेरी दृष्टि में

~~Lal ded Meri Drishti Me~~

Lal Meri Draghti Mai

Bimla Raina

बिमला रैणा

प्रकाशक

एन० पी० सर्च

B-6/62, सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली

अर्पण

माजि लल्लेश्वरी हुंद्य नावु
{ माँ लल्लेश्वरी के नाम अर्पित }

षट्चक्रमूर्तिः
सहस्रदलपद्म
शून्यचक्र
द्विदलपद्म
आज्ञाख्यचक्र
षोडशदलपद्म
विशुद्धाख्यचक्र
द्वादशदलपद्म
अनाहतचक्र
दशदलपद्म
मणिपूरकचक्र
षट्दलपद्म
स्वाधिष्ठानचक्र
चतुर्दलपद्म
आधारचक्र
सिद्धासनम्
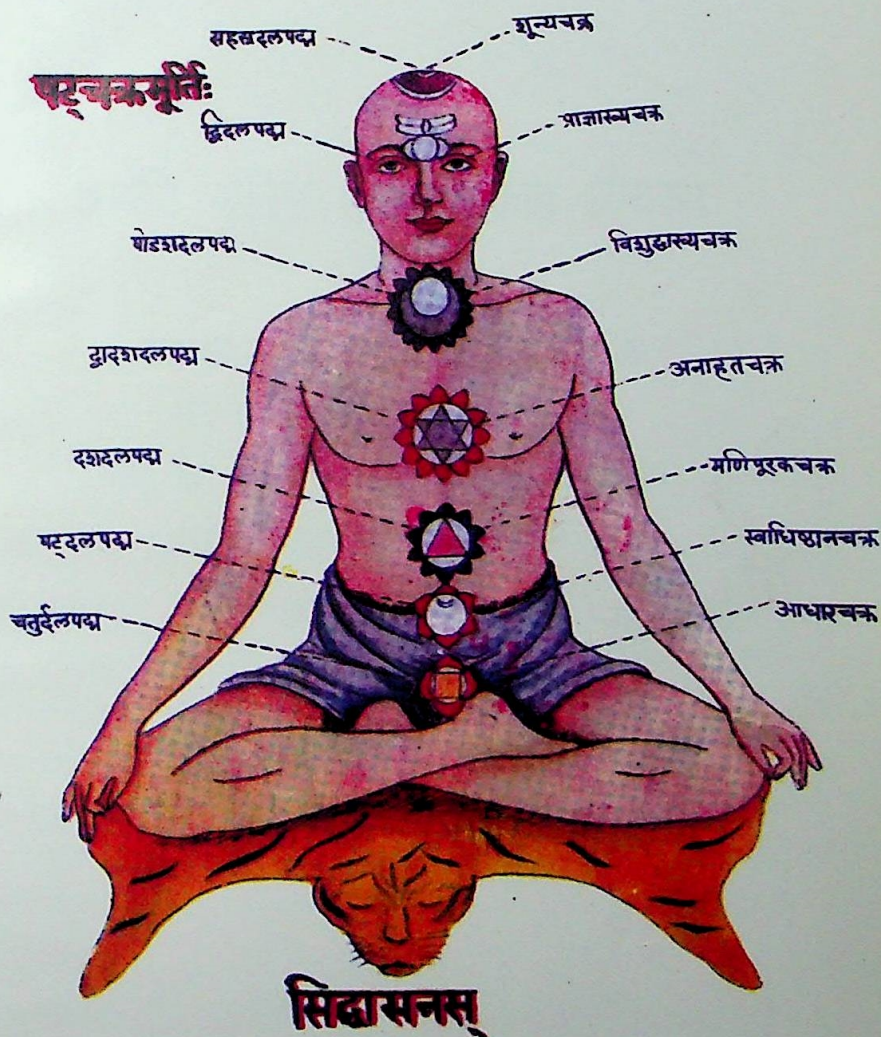
आयेयि वॉनिस तु गॅयि काह अॅन्दरस

असॉर्य संसॉर्य वोन्य दिथ वान गोम
मन लयि प्राण गोम अन्तर्ध्यान ।
मंज़ देह तोन्दरस काह अॅन्दुर्य ठान गोम
ललि प्रस्थान गोम परमस्थान ।

– लेखिका

अनुक्रम

– 0 –

नमो श्रीम विमर्श अरिहन्तः

ललि नालुवठ चलि नु ज़ाँह

{ मुक्त नहीं होगी अंतस्ताप से लल्लेश्वरी }

मेरे लिये यह सौभाग्य की बात है कि माँ लल्लेश्वरी के वाखामृत का पान/अध्ययन करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। इस अमृत का पान करके इसके माधुर्य का वर्णन करना अति कठिन है। यह वाख अमृत वेद, उपनिषद्, शैव तथा त्रिक शास्त्र का सागर है। इस ज्ञान रूपी अथाह सागर की एक बूँद से इसकी गहराई का अनुमान लगाना निश्चित रूप से असम्भव है। पर मूल तत्त्व का परिचय अवश्य प्राप्त होता है । माँ लल्लेश्वरी शिव योगिनी थी इनके वाखों में काश्मीर शैव–दर्शन के दृष्टिकोण से जीव, जगत, और ईश्वर के स्वरूप और सम्बन्ध की व्याख्या हुई है। इन्होंने शिव में समाहित होने का कथन या निर्देश ही नहीं दिया अपितु साधना पथ की पगडंडियों को राजमार्ग में बदल दिया है। इसमें प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का उत्तर नहीं बल्कि प्रक्रिया में स्वयं उतर कर प्रश्नों का अपने आप समाधान प्राप्त होता है।

जहाँ माँ लल्लेश्वरी सर्वतीर्थ स्वरूपा थी वहीं जन–सम्प्रदाय ने उनके विषय में बुद्धि हीनता दिखाई । कभी उनके पूर्व जन्म की और कभी वर्तमान जन्म के विषय में मन गडन्त कहानियाँ बनाईं जिनसे जन–मानस में भ्रम उत्पन्न हुआ और वास्तविकता छिपी रही । आज तक हम माता लल्लेश्वरी की जन्म तिथि इत्यादि के

विषय में निश्चित रूप से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं । उनका शैशव कैसा था और माता–पिता एवं वंश क्या था और कब और कहाँ निर्वाण प्राप्त कर चुकी इस विषय में भी हमें अपूर्ण ज्ञान है । सही दिशा में अनुसन्धान करने का भी प्रयास नहीं किया। इनके बारे में जन–प्रचलित कहानी है कि वे वस्त्रहीन घूमती थीं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि लल्लेश्वरी सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर चुकी महायोगिनी थीं और बावली नहीं कि अपनी भौतिक काया पर वस्त्र भी नहीं रखती। उनके समकक्ष साधनारत साधक भौतिक देह से निकल कर सारे ब्रह्माण्ड में विचरण करने की शक्ति रखते हैं और फिर वापिस देह में प्रवेश करते हैं। विचरण करने के दौरान ऐसे योगी को अपने अन्तर–बाहर का पूरा ज्ञान रहता है। निर्वसन रहना या दिगम्बर प्रथा जैन–सम्पद्राय में प्रचलित है केवल पुरष साधकों में स्त्रियों में कदापि नहीं। इसके अतिरिक्त कश्मीर की भूमि में न ही इस प्रकार की प्रथा है और ना ही यहां की जलवायु ऐसे स्थिति के अनुकूल है। लल्लेश्वरी अद्वैत स्वरूप शिव के प्रति अनन्य भक्ति रखने वाली उपासिका थी । वर्षों साधनारत रहने के पश्चात् जाति, वर्ग, कुल या सम्प्रदाय की सीमओं से ऊपर उठकर वह मानव के विकास के लिए चिन्तनरत रही । वह अपने साधानात्मक जीवन में मानव विकास, प्रगति और चिन्तन को एक नई दिशा प्रदान करती है।

इन वाखों का अध्ययन करके मुझे प्रतीत हुआ कि वाखों का स्वरूप विकृत हो चुका है। वाखों के वर्तमान स्वरूप को देखकर तथा व्यवहार में विकृत हुए शब्दों के प्रयोग ने मुझे क्षुब्ध किया और मुझे प्रेरणा मिली इनको अपने वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत करने की । ऐसे कार्य के लिए अनुसन्धान/शोध वांछनीय था और इस दिशा में मेरा यह प्रयास पूर्व में किये गये प्रयासों का खण्डन करने का नहीं बल्कि शुद्ध पाठ खोजने की जिज्ञासा है। इस कार्य में मैं किस सीमा तक सफल रही हूँ इसका आकलन बुद्धिजीवी तथा पाठक वर्ग स्वयं करेगा। माँ लल्लेश्वरी की अनुकम्पा और गुरुकृपा मुझे इस दिशा में सहायक रही। जहाँ कहीं, भी मुझे कोई सन्देह उपस्थित हुआ अपने चिन्तन के आधार पर मैं ने शंका का स्वयं समाधान ढूँढ

निकाला। पाठालोचन के सिद्धान्त को ध्यान में रख कर मैं ने विशिष्ट प्रक्रिया का अनुकरण किया जिस में उन प्रयोगों के संदर्भ में विस्तार से लिखा जो प्रयोग सामान्य व्यवहार से अलग हटकर मैंने किए हैं। विद्वान आलोचक और पाठक मेरे निष्कर्षों के बारे में स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि कौन सा प्रयोग सही और शब्द/शब्दों का कौन सा रूप विकृत हुआ है। पारिभाषिक शब्दों का भी मैंने यथास्थान अर्थ और टिप्पणी देकर अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यह कहना परमावश्यक है कि ललद्यद के वाख जो हमारे पास आज उपलब्ध हैं वे कहीं लिखित रूप में हमारे पास 19वीं शताब्दी से पूर्व नहीं थे । यह सभी वाख हमारे पुरखों ने कण्ठस्थ किए थे और अपनी दूसरी पीढी तक मौखिक रूप से प्रेषित किये हैं। सन् 1914 ई0 में श्रीमान सिटेन महोदय और सर जार्ज ग्रियर्सन ने इन वाखों को घाटी में रह रहे लोगों के घर–घर जाकर लिपिबद्ध किया और कश्मीरी समाज तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया। इस महान प्रयास के लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त प्रो0 जयलाल कौल, श्री नन्दलाल तालिब और श्री बी0 एन0 पारिमू जी और अन्य विद्वानों ने भी इस अमूल्य धरोहर को हम तक पहुँचाने का मौलिक कार्य किया । यह शताब्दियों तक अविस्मरणीय रहेगा। जन मानस पर अंकित इन वाखों को लिपि–बद्ध कर शब्दशः लिखित रूप में प्रस्तुत करने में इन विद्वानों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा जिसके कारण कई वाखों के शब्द विकृत हो गए हैं । इस तरह के संशय कई विद्वान बन्धुओं ने कई अवसरों पर प्रकट किए और ध्यान देने की आवश्यकता महसूस की । नवम्बर 2000 में दिल्ली में आयोजित एक विचार गोष्ठी में जिस का विवरण पृष्ठ क्रमांक 273 में दिया गया है, में कई विद्वानों ने इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

परिशिश्ष्ट में ग्रियर्सन महादेय द्वारा संगृहीत 'ललवाक्यानि' के शेष वाख

एवं विषय–परिचय (Introduction) भी दिया गया है। इस सामग्री का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है और किसी भी शोधकर्त्ता के लिये उपयोगी सिद्ध होगी ।

वाखों को अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने के प्रयोजन से रची गयी इस पुस्तक को साकार रूप प्रदान करने के लिए मैं प्रो0 डॉ0 भूषणलाल कौल (भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय) की अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने न केवल वाखों को काव्यरूप में हिन्दी रूपान्तर किया बल्कि मुझे समय–समय पर अपने परामर्श देते रहे और निष्कर्ष कर पहुंचने के लिए सहायता की । मैं उनका सहृदय आभार प्रगट करना अपना पहला दायित्व समझती हूँ ।

मैं श्री जी0 आर0 हसरत गड्डा के प्रति आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होंने मुझे लल–वाखों पर नवीन दृष्टि से कार्य करने की प्रेरणा दी तथा मेरे लिए आवश्यक शोध–सामग्री एवं अलभ्य पुस्तकों का प्रबन्ध किया। कश्मीरी के सुविख्यात कवि प्रोफेसर रहमान राही, भूतपूर्व अध्यक्ष कश्मीरी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा धर्म है। उन्होंने भी इस शोध कार्य के लिये मुझे प्रोत्साहित किया ।

मैं डॉ0 अमर मालमोही जी के प्रति अपना आभार प्रगट करना आवश्यक समझती हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूर्ण करने के लिए सम्बन्धित पुस्तकें उपलब्ध कराईं।

अपने पतिदेव श्री के0 के0 रैणा जी के प्रति दो शब्द लिखना मेरा परम कर्तव्य है जिन्होंने मेरे संकल्प को दृढ़ बनाया और सक्रिय सहयोग प्रदान कर मुझे इस कार्य को पूर्ण करने में सहायता की । उनके सहयोग के बिना यहं कार्य पूरा होना असम्भव था।

मैं अपनी बहू अपरना और बेटा विक्रम का सहयोग भी नहीं भूल सकती हूँ क्योंकि उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी कोलकत्ता से मेरे लिए सामग्री का संकलन

किया और उसे जम्मू मेरे आवस तक पहुँचाया । बेटी नीरू का सकारात्मक सहयोग भी कोई कम सराहनीय नहीं है।

मैं श्री राजेन्द्र कम्पासी की भी सराहना करती हूँ । इस समस्त सामग्री को कम्प्यूटर पर तैयार करने का काम उन्होंने ही सहर्ष किया ।

मैं अपने साधनात्मक जीवन की एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में ये शोध निष्कर्ष पाठक समाज एवं आलोचक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत कर रही हूँ । उन्हीं में नीर–क्षीर विवेक की शक्ति है। सम्भव है कश्मीरी जन–मानस में लल–वाखों के कथ्य और तथ्य को समझने और पहचानने की रुचि जाग्रत हो। मैं समझूंगी कि मेरी साधना सफल हुई। लल द्यद हम सब की सांस्कृतिक पहचान है। ' हम सब' से मेरा अभिप्राय है प्रत्येक कश्मीरी जन । मैं सभी कश्मीरी बन्धुओं से विनम्र निवेदन करती हूँ कि वह ललद्यद को किसी पंथ, जाति या सम्प्रदाय से न जोड़ें क्योंकि इस प्रकार साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचा योगस्थित मानव जाति और पंथ की सीमाओं को लांघ कर समस्त बन्धनों से सर्वथा मुक्त होता है। कश्मीरियत लल्लेश्वरी के वाखों में उसी प्रकार सुशोभित है जैसे किसी स्वर्ण आभूषण में अनमोल रत्न । इसे हम सब सहेज कर सदा सुरक्षित रखें यही हमारा धर्म और कर्म है।

बिमला रैणा

योगः कर्मसु कौशलम् !

चौदहवीं शताब्दी के कश्मीर इतिहास में लल्लेश्वरी/ललद्यद का दिव्य अनुभूति सम्पन्न प्रखर व्यक्तित्व जाज्वल्यमान प्रकाश स्तम्भ के समान 21वीं शताब्दी के आतंकी युग में भी सहृय योगसिद्ध प्रबुद्ध जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। लल्लेश्वरी का रचना संसार समसामयिक युग में भी ज्ञान–स्रोतस्विनों को प्रवाहित करने में समर्थ है। इन के वाखों में आत्मबोध की पहचान निहित है। रहस्यमय तत्त्वों और अलौकिक अनुभूतियों के स्फटिक कणों का स्फुरण है। गहन तमस के बीच टिमटिमाती रश्मियों की आभा है। इन वाखों में व्यक्ति (मैं) सम्पूर्ण समष्टि के साथ प्रतिबिम्बित है। इन्हें समझने और पहचानने के लिये क्रियावान साधक की निष्ठा और ज्ञान गरिमा अपेक्षित है। चिन्तनस्रोत की कई धारायें यहाँ एक साथ प्रवाहित मिलेंगी ।

श्रीमती बिमला रैणा ने पाठलोचन (Textual Criticism) के आधार पर ललद्यद के वाखों का नवीन दृष्टि से भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

'वाख' संस्कृत के मूल शब्द 'वाक्' का तद्भव रूप है।। घाक् अर्थात् वाणी, ध्वनि, कथन,(भीतरी सन्देश) बोलने की इन्द्रिय या सरस्वती। मुँह से उच्चरित सार्थक ध्वनि वाक् है। काव्य–विधा के रूप में वाक् एक चतुष्पदी है जिसमें प्रायः एक साधनारत कवि अपने निजी अनुभव या गहनानुभूति को संक्षिप्त आकार के भीतर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अद्भुत अलौकिक आत्मानन्द के भीतरी उफान को

बाह्याभिव्यक्ति प्रदान कर कवि/कवयित्री आत्मनियंत्रित अवस्था में आनंन्द रश्मियों से सिक्त हो उठता/उठती है।

श्रीमती बिमला रैणा के दो 'वाख' संग्रह 'रेश माल्युन म्योन' एवं 'व्यथ मा छे शोंगिथ' क्रमशः सन् 1998 ई0 एवं 2003 ई0 में प्रकाशित हुए । 'रेश माल्युन म्योन' में 298 वाख संगृहीत हैं और 'व्यथ मा छे शोंगिथ' में 213 वाख। इन रचनाओं के प्रकाशन के साथ ही बिमला जी की साहित्यिक सर्जना पठित-अपठित समाज में चर्चा का विषय बन गयी । यहाँ तक कि लोगों ने कहा – 'लल्लेश्वरी का पुनः जन्म हुआ है।'

बिमला जी मूलतः योगसाधिका है। लल्लेश्वरी के वाखों पर वही तार्किक दृष्टि से विचार कर सकता है जिस ने स्वयं साधना पथ को अपना कर अद्‌भुत अलौकिक को तलाशने का प्रयास किया हो। गत तीस-पैंतीस वर्षों से लेखिका निरत साधना में लीन है। उसमें दिव्य चक्षुओं से निहारने/निरखने की क्षमता है। भौतिक आकर्षण के घटाटोप को चीर कर उस की सत्यान्वेषी दृष्टि सौन्दर्य को निहारने का प्रयास कर रही है।

हर एक कुम्भकार (कुम्हार) नहीं होता । माटी को कमाना है, चाक पर चढ़ाना है और आँगुरी/अँगुली कला से माटी को आकार देना है। दूसरे दिन बरतन के भीतर हाथ सहाय देकर बाहर से ठोंकना-पीटना होगा और फिर भट्‌ठे (पजावा) में डाल कर तपाना होगा। बिमला जी कुम्भकार की भूमिका निबाहने में दक्ष है । अतः अपने निजी अनुभव और सामर्थ्य के आधार पर उन्होंने लल्लेश्वरी के वाखों की तह तक पहुँचने का साहस किया है।

उनका यह अध्ययन शुद्ध भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन है जो पाठालोचन के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है। जब एक रचना बहुत समय तक मौखिक परम्परा में रहती है और पर्याप्त समय व्यतीत होने के बाद लोकोच्चारण और पाठ श्रवण के आधर पर उसे लिखित रूप प्रदान किया जाये तो स्वाभाविक है कि उस रचना विशेष

के कई रूप सामने आयेंगे क्योंकि लोक स्मरण शक्ति एवं बौद्धिक क्षमता हर स्थान पर एक जैसी नहीं होती है। तब यह समस्या हमारे सम्मुख उपस्थित होती है कि इन विविध रूपों में से मूल और सही रूप कौन सा है और क्यों ? 'क्यों' पर विचार करना आवश्यक है नहीं तो 'कौन' भीतर ही भीतर खोखला रह जायेगा ।

ललवाखों के मूल तक जाने का प्रयास श्रीमती बिमला रैणा ने किया और गत पाँच वर्षों से यह योग अभ्यासिनी महिला ललवाखों पर विचार करती रही और मूल की तलाश में 'नेशनल लाइब्रेरी' कोलकत्ता से 'रिसर्च लाइब्रेरी' श्रीनगर तक लगातार चक्कर काटती रही । विषय काफ़ी मुश्किल, पेचदार, उलझन भरा, विवादास्पद, लोक–मान्यताओं और जन–विश्वासों के साथ जुड़ा था। इसमें कठिन परिश्रम एवं गहन अध्ययन का आवश्यकता थी क्योंकि कंकरीली भूमि पर चढ़ाया सीमेंट का लेप छेनी और हथौड़े से तोड़ना था। तथ्यान्वेषण की इस प्रक्रिया में बिमला जी ने लल्लेश्वरी के वाखों के कई रूपों का, जो भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपनी रचनाओं में दिये हैं, तुलनात्मक अध्ययन करके मूलपाठ के प्रामाणिक स्वरूप को सुनिश्चित करने का प्रयास किया है।

लेखिका भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से शब्दों की अन्तरात्मा पर विचार करती है। संस्कृत तत्सम शब्द भण्डार से लिये गये शब्दों में तद्भव रूप किस-प्रकार निश्चित हुए तथा देशज शब्दों के व्यवहार की प्रक्रिया क्या रही है और शताब्दियों तक लल–वाखों का मौखिक–परम्परा में रहने के कारण विकार अथवा विकृति की क्या सम्भावनाएँ रहीं होगी – लेखिका ने अपनी संतुलित सूझबूझ से इन तत्त्वों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं और ठोस निष्कर्ष भी दिये हैं।

लेखिका का मानना यह है कि ललवाखों के विश्वसनीय प्रामाणिक स्वरूप को स्थिर करने के हेतु यह नवीन दृष्टि से किया गया एक प्रयास–मात्र है । सम्भव है कि कई विद्वान–बन्धु इन निष्कर्षों से सहमत नहीं होंगे। उन्हें अपनी असहमति व्यक्त करने का पूरा अधिकार है।

लेखिका केवल नवीन सम्भावनाओं पर प्रकाश डाल रही है। उन का केवल इतना निवेदन है कि समय के झंझावातों में लल–वाखों का मूल पाठ विकृत हो चुका है। मूल को निश्चित करने के हेतु उन्होंने जो अनुसन्धान कार्य किया वही शोध–निष्कर्ष–स्वरूप इस पुस्तक का प्रमुख विविच्य–विषय बन गया है।

यहाँ मैं इस तथ्य पर प्रकाश डालना चाहता हूँ कि भाषा का रूप परिवर्तित होकर विकसित होना ही उसके जीवित होने का प्रमाण है । जिन भाषाओं में विकास की प्रक्रिया रुक जाती है वे धीरे–धीरे लुप्त हो जाती हैं । यह भाषा विकास विद्वानों, भाषा पण्डितों तथा अभिजात शिक्षित समुदाय पर निर्भर नहीं रहता अपितु सामान्य जन–समुदाय अथवा लोक इच्छा पर निर्भर रहता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लगभग चार सौ वर्षों तक लल्लेश्वरी के वाख मौखिक परम्परा में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रव्य काव्य के समान पहुँचते रहे। महिला अनुसंधित्सु ने कठिन परिश्रम, गहन निष्ठा और दृढ़ संकल्प के साथ यह काम आगे बढ़ाया है। वह निरन्तर सम्भावनाओं की तलाश में रही है यही कारण है कि पुस्तक प्रकाशन से कुछ दिन पूर्व तक वह पाठ के स्वरूप को सुनिश्चित करने के हेतु प्रयोग करती रही । हमें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि लल्लेश्वरी ने लोक–मानस को महत्त्व दिया है। उनके सामने किसी महान योगी की तुलना में सर्वसाधारण जीव अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में श्रीमती बिमला रैणा ने लल्लेश्वरी की पुनीत स्मृति को एक बार फिर जनमानस में उजागर किया है। अध्यात्म के रसकणों से हृदय सिक्त हो उठा और कान्ति छटा से दीप्त ।

व्यक्तिगत रूप से मुझे लेखिका की कर्तव्यनिष्ठा, संकल्पशक्ति और अभिव्यक्ति की क्षमता ने प्रभावित किया है। वह बहुत सोच समझ कर किसी निर्णय पर पहुँचती है। विवेच्य–विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और समस्त

सम्भावनाओं को ध्यान में रख कर अपना निष्कर्ष देती है।

इस में कोई सन्देह नहीं हैं कि एक़ चर्चित रहस्यवादी कवयित्री के साथ–साथ बिमला जी प्रस्तुत रचना के द्वारा शोध के क्षेत्र में भी एक सफल अन्वेषिन् सिद्ध होंगी ।

अधिकाधिक विचार गोष्ठियों में नव प्रकाशित रचना की पर्याप्त चर्चा हो, विद्वान बन्धुओं की सुलझी हुई प्रतिक्रियायें व्यक्त हों, लेख और टिप्पणियाँ प्रकाशित हों, एलक्ट्रानिक और प्रिंट माध्यमों का भरपूर प्रयोग हो तथा जन–मानस चमत्कृत हो उठे – यही तो एक नव–प्रकाशित रचना की सफलता के लक्षण हैं।

यह सब पढ़ने–सुनने के लिये मैं प्रतीक्षारत रहूँगा ।

22.10.2006

प्रो0 (डॉ0) भूषणलाल कौल
'पर्ण कुटीर'
बरनाई पो0 आफिस – मुट्ठी
जम्मू– 181205

{ 01 }

واکھ مانس کول اکول نہ اَتے
چھوپہ مُدرہ اَتہ نہ پرویش
روزان شِو شکتھ نہ اَتے
مۆتِ یئے کُنہہ تہ سُیہ اوپدیش

वाख मानस क्वल अक्वल ना अते,
छ़वपि मुदरि अति ना प्रवेश ।
रोज़ान शिव शखथ् ना अते,
म्वति यै कुँह तु सुय व्पदीश ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 135, पृ0 220

वाक् मानुस ।। कुलकील् ।। ना यत्ति
छुपिय् मुद्रा नाति नाति प्रवेश् ।।
रजन् दिवस ।। शिवशत्तु ना यत्ति ।
मुतो को ।। ता सोयी उपदेश् ।।

–'ललवाक्याणि' ग्रियसन (स्टेन–बी0) वाख 14, पृ0 23

वाख मानस कोल अकोल ना अते
छ़वपि मुद्‌रि अति ना प्रवीश
रजन द्यन शिव शक्ति ना अते
म्वति यय कुंह तु सुय व्वपदीश ।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख पर विचार करते समय सब से पहले हमारा ध्यान इस बात की ओर जाता है कि 'वाख मानस' किसे कहते हैं ।

ईश्वर स्तुति में कहा गया भक्तिगीत भजन कहलाता है और यह भजन दो प्रकार का होता है –

वाक् भजन तथा मानस भजन

वाक् भजन में वाणी भक्त की आराधना आराध्य तक ले जाती है । मुँह से ऊँची आवाज़ में पढ़ना अथवा मधुर कंठ से गा कर ईश लीला का बखान करना वाक्–भजन की विशेषता है। मानस भजन में वाणी की कोई भूमिका नहीं रहती अपितु मनसः भक्त ईश्वर स्तुति में लय हो जाता है। बाह्य जीवन एवं भौतिक आकर्षणों से विमुख होकर वह भीतर प्रवेश करता है और प्रणव (ओम्कार) नाद में लय हो जाता है। इस अवस्था में न ज़बान हिलती है न होंठ, न कंठ स्वर की आवश्यकता है न विशिष्ट मुख–मुद्रा की । भीतर ही भीतर मानस के किसी प्रकोष्ठ में अनाहत नाद सुनाई देता है। योग साधक को यह नाद अनाहत अवस्था (स्थान हृदय) अर्थात् कुंडिलिनी जाग्रण की चतुर्थ स्थिति में पहुँच कर ही सुनाई देता है। यही नाद जो साधक के मानस में गूंजता है और जिसके लिये वाक्–शक्ति अथवा वाक् अवयवों क़ी कोई आवश्यकता नहीं होती है – वाक्–मानस कहलाता है। प्रस्तुत वाख के प्रथम शब्द में कोल–अकोल शब्द–प्रयोग विचारणीय है।

यह वास्तव में कोल–अकोल शब्द प्रयोग है अर्थात् उचित समय और कुसमय जिसे उर्दू में वक़्त–बेवक़्त की बात कहते हैं।

यहाँ वाक्–मानस में सुसमय (उचित समय)–कुसमय (प्रतिकूल) (कॉल–अकॉल) का कोई मतलब नहीं। भक्त इस अवस्था में पहुँच कर काल–बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह तो अनहत की अवस्था है क्योंकि कुंडलिनी जागरण में अनहद् की अवस्था के बाद विशुद्धाख्य अवस्था में पहुँच कर साधक की वैखुरी (वाक् शक्ति) खुल जाती है और ज्ञान की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो उठती है।

यह तो मानसिक मन्त्र–योग अर्थात् अजपा–जप की बात है। अजपा मन्त्र / हंस मन्त्र (सोऽहम मन्त्र) प्रश्वास–निश्वास क्रिया से जुड़ा है। इसमें मुँह से कोई उच्चारण नहीं होता अपितु मन ही मन जप किया जाता है।

यह तो मानसिक जप की क्रिया है। मन की निश्चेष्ट–मुद्रा से वहाँ प्रवेश नहीं । इस लिये लल्लेश्वरी कहती है – चुप्पी साधने से अथवा मन की निश्चेष्ट मुद्रा से वहाँ प्रवेश नहीं मिलता है। यहाँ मन सजग होना चाहिए, सक्रिय और मन्त्र–जप मग्न, तब बात बन सकती है। रात–दिन अथवा रूप–मय शिव और शक्ति (साकार रूप) का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं । यह तो 'परमशिव' की अवस्था (सूक्ष्म) का यथार्थ बोध है। जिसका उल्लेख 'कश्मीर शैव–दर्शन' में किया गयां है। यदि इस स्थिति में पहुँच कर कुछ शेष रह जाता है वही प्राप्त है और उसे ही पाने का उपदेश अर्थात् अगले मंज़िल पर पहुँच कर वैखुरी (वाक् शक्ति) खुल जायेगी और अनहद् (अनाहत नाद) की लय चतुर्दिक् गूँज उठेगी।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है:–

वाख मानस कोल अकोल ना अते
छ्वपि मुद्रि अति ना प्रवीश
रजन ध्यन शिव–शक्ति ना अते
म्वति यय कुंह तु सुय व्पदीश ।

हिन्दी अनुवाद :–

वाक्–मानस में वख़्त बेवख़्त का कोई विचार नहीं
चुप्पी साधे निश्चेष्ट मुद्रा से नहीं मिलता प्रवेश
रूपमय शिव–शक्ति का यहाँ नहीं निवास
रहे जो कुछ शेष, वही है प्राप्य, पाने का उपदेश।

शब्दार्थ :–

वाक् मानस – मानसिक जप, प्रणव – जिसे मन जपता है।
कोल–अकोल – वक्त–बेवक़्त (सुसमय, कुसमय)
मुद्रि – मुद्रा, मुख चेष्टा, विशेष भाव सूचक स्थिति
प्रवीश – पहुँच
शिव–शक्ति – अर्थात् साकार रूप
म्वति यय कुंह – यदि कुछ शेष रह जाये ।।
रजन् दयन – रात दिन

ooo

आधारचक्र
(अर्थात्)
चतुर्दल पद्म
PELVIC PLEXUS
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान
वं
सं
शं
षं

اَبھیاسی سَوِکاسی لَیہِ وۄتھو
گگنَس سگُن میوٗل سَمہ ژرٹا
شوٗنیہ گوٗل تہٕ اَنامے موٗتو
یوٗہے وۄپدیش چھُے بٹا

अभ्यॉस्य् सविकास्य लयि वोथू
गगनस सगुन म्यूल समिच़्रटा ।
शून्य गोल तु अनामय मोतू
योहय व्वपदीश छुय बटा ॥

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 134, पृ० 218

अभ्यॉसी सविकासी॥ लय् उत्थो
गगनस् ॥ गगुन् (sic) मिलो संश्रट्टा ॥
श्रून्य गलो ता अनामय ॥ मुतो ।
एहुय् ॥ उपदेश ॥ छ्योयी भट्टा॥

–'ललवाक्याणि' ग्रियसन(स्टेन–बी०) वाख 15, पृ० 23 (स्टीन –बी)

अभ्यॉसी स्व विकॉसी लय व्वथो
गगनस सगुन म्युॅल समस्त च़्राठा
समन्य् गोल तय उन्मन्य मोतो
योहय व्वपदीश छुय – बॅ–हठा ।

– लेखिका

यहाँ कई प्रश्न उभर कर सामने आते हैं, जैसे –

1. 'शून्य गोल' जब शून्य गल जायेगा तो 'अनामुई' शेष कैसे रह पायेगा। 'शून्य' शब्द महाशून्य का भी बोधक है, रिक्ति का भी वाचक है और निराकार ब्रह्म का भी प्रतीक है।

2. अनामुई – शब्द का क्या अर्थ है ? इस शब्द के मूल अर्थ पर ध्यान देना आवश्यक है।

3. लल ने 'व्वथो' शब्द का प्रयोग क्यों किया है इसके पीछे क्या प्रयोजन रहा है ?

कभी कभी 'वाख' में केवल एक शब्द के प्रयोग से ही पूर्ण अर्थ बदल जाता है अतः यदि कल्पित शब्द का प्रयोग किया जाये तो अर्थ जीवित होते हुए भी व्यर्थ हो जाता है ।

प्रस्तुत वाक् के मूल रूप पर विचार करते समय निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है –

1. तृतीय पंक्ति में यह 'शून्य' शब्द नहीं है अपितु 'समन्य्' शब्द है जिसका अर्थ छः चक्रों से जुड़ा है। हठ योगी कुंडलिनी शक्ति को जगा कर जब मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धार्थ तथा आज्ञा–चक्र तक पहुँच जाता है जब वह छठवें चक्र से भी आगे बढ़ कर सातवें और अन्तिम चक्र सहस्रार की ओर गमन करता है तो वहाँ से समना तक ही यात्रा एकादश पड़ाव है। अ, उ, म्, बिन्दु, अर्द्ध चन्द्र, निरोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी और समना – ग्यारह पड़ावों को पार कर साधक लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। तब यह आवृत्ति समाप्त हो जाती है। साधक समना से उनमना की अवस्था में प्रवेश पाता है। इसीलिये तृतीय पद का पाठ इस प्रकार होना चाहिए :–

'समन्य् गोल तय उन्मन्य् मोतो

2. अन्तिम पंक्ति में 'बटा' शब्द का प्रयोग लल्लेश्वरी ने नहीं किया है। मेरे विचार से इस पद का पाठ इस प्रकार होना चाहिए :–

' एहुय व्पदीश छुय बॅ–हठा

अर्थात् यही उपदेश है हठयोगी की साधना का ।

अब वाख का रूप इस प्रकार निश्चित हो जायेगा –

अभ्यॉसी स्व विकॉसी लय व्थो
गगनस सगुन म्यॅुल समस्त ज़्राठा
समन्य् गॊल तय उन्मन्य् मॊतो
यॊहय व्पदीश छुय – बॅ–हठा

हिन्दी अनुवाद

अभ्यास और स्वविकास की लय से उठो
(नीचे से ऊपर की ओर जा)
गगन से सगुण मिले, सम हो गये
समनि (समन्य्) से बाहर निकल कर शेष रह गया
उनमनि (उन्मन्य्)
यही उपदेश है हठ–योग का ।

टिप्पणी :–

कुण्डलिनी शक्ति को अभ्यास और आत्म विकास अथवा आत्म प्रकाश के माध्यम से ही ऊपर की ओर उठाया जाता है। मूलाधार नीचे है और सहस्रार शीर्ष पर।

गगन का प्रयोग सहस्रार की अवस्था के हेतु किया गया है। शीर्ष का बोधक है। सगुण आज्ञा चक्र तक पहुँचे उसे योगी का बोधक है जो बूँद के समान सागर में लय होकर सागर का रूप धारण करता है अर्थात् सम हो जाता है। साकार रूप असीम निराकार में सम हो

जाता है ।

शब्दार्थ :–

व्यथो – उत्थो (उत्थान) शब्द का विकृत रूप;
ऊपर की ओर उठना – संकेत कुंडलिनी जागरण की ओर है

समन्य् और उन्मन्य् – आज्ञा चक्र एवं सहस्रार के मध्य विशिष्ट दो अवस्थाएँ समनि एवं उनमनि कहलाती हैं। इनसे आगे सहस्रार का प्रवेश होता है।

बॅ–हठा – हठ योग साधना के द्वारा

मोतो – यह कश्मीरी शब्द 'मोच़्याव' का पूर्व रूप हैं शेष रह जाना, बाक़ी रहना।

स्वविकॉसी – आत्मोत्थान के द्वारा

समस्त व्राठा – स्थायी रूप से सम हो जाना, एक हो जाना।

योहय – अर्थात् ऐसा ही, यही ।

○○○

Sahasrāra
Samani
Śakti
Nāda
Ardhendu
Ājñācakra
Unmani
Vyāpikā
Mahānāda
Nirodhikā
Bindu
Viśuddha
Anāhata
Hridaya Cakra
Ka-da
Yonisthāna
Mūlādhāra
Kundalini
Svādhisthāna
Manipūra
Svayambhoolinga

{ 03 }

لل بو دٕرایس لولہ رے
ژھانڈان لوٗسُم دِین کِہو راتھ
وُچھُم پٔنڈت پننہِ گرے
سُے مےٚ رٕٹمس نیٚچھترٕ تہٕ ساتھ
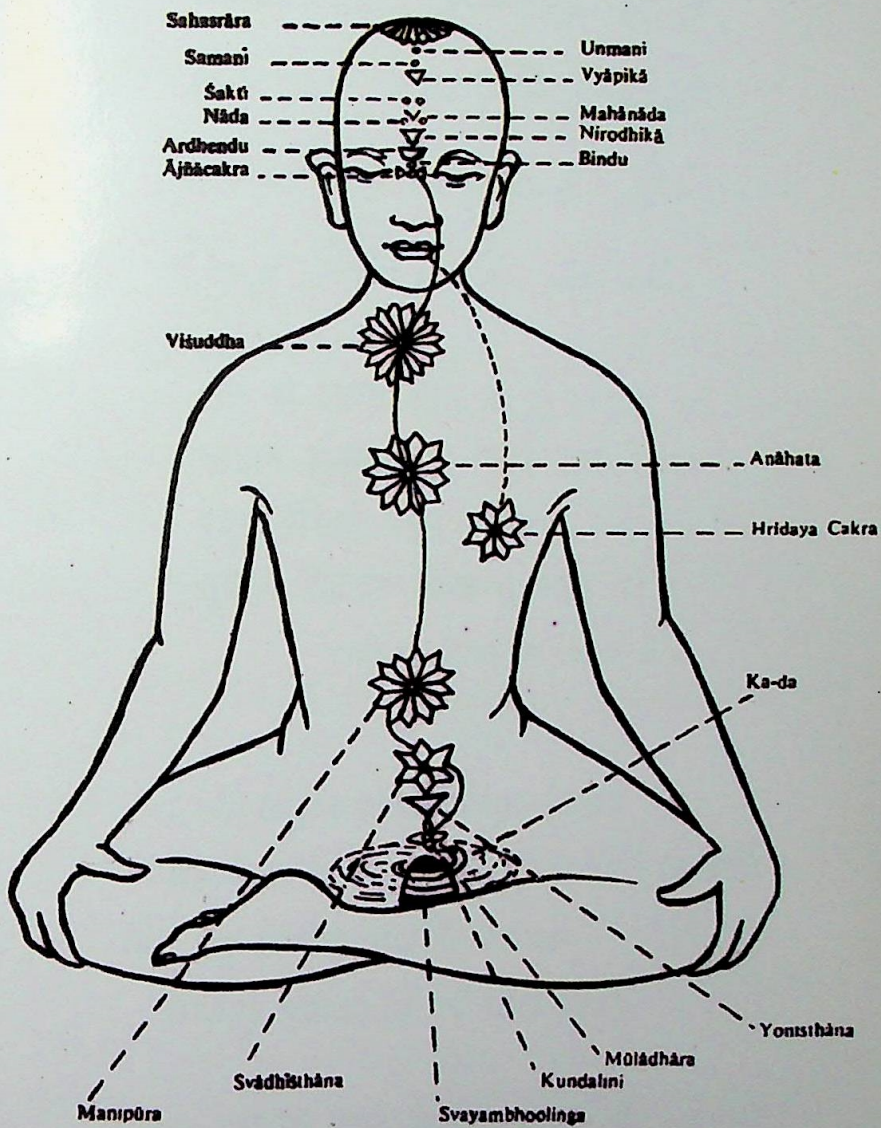
लल बो द्रायस लोलु रे
छ़ांडान लूसुम द्यन किहो राथ ।
वुछुम पॅण्डित पनुने गरे
सुय मे रोटमस नेछत्र तु साथ् ।।

—'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 97, पृ0 172

Lal bŏh tsāyĕs sŏman-bāga-baras
wuchum Shiwas Shĕk^{a}ṭh milith ta wāh
tāt^{i} lay kür^{ü}m amrĕtā-saras
zinday maras ta mĕ kari kyāh

—'ललवाक्याणि' ग्रियर्सन वाख 03, पृ0 25 (स्टीन —बी)

लल ब्वद्धि आयस लोलु हुरे
छ़ांडान लोस्तुम द्यन किहो रात
वुछुम पण्डित पनुने गरे
सुय मे रोटमस न्यॅछत्र तु साथ ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद विचारणीय है –

भाव को लेकर अर्थ लिखना एक बात है और शब्द के अभिधा अर्थ के आधार पर व्याख्या करना दूसरी बात है। इस पद में 'लल बु द्रायस' शब्द विचारणीय है । 'द्रायस' का अर्थ है – निकलना, प्रस्थान। जबकि लल कहती है तलाश अपने अन्दर ही है। तो फिर निकली कहाँ ?

मेरे विचार से यह ' ब द्रायस' के बदले ' ब्वद्धि आयस' शब्द होना चाहिए जिसका अर्थ है – मुझे बोध हो गया। कश्मीरी में एक भजन की काव्य–पंक्ति इस प्रककार है :–

" ब्वद्ध छन वातान चान्यन रंगन, कम रंग छिय ।
श्री राज राजेश्वरिये आमत शरण छिय ।।"

–कृष्ण दास '– श्री शारिका लीला लहरी, द्वितीय संस्करण 1975 ई0
शारिका चक्रेश्वरी– हरी पर्वत श्रीनगीर प्रकाशन

' लोलु रे ' में 'रे' शब्द बिल्कुल व्यर्थ और अर्थहीन है। वास्तव में यह 'लोलु रे' शब्द नहीं है अपितु ' लोल हुरे ' शब्द है।

कश्मीरी में 'हुरुन' शब्द का अर्थ है – अतिरिक्त, शेष रहना, आवश्यकता से अधिक होना अर्थात् आधिक्य । इस 'हुरुन' शब्द से 'लोल हुरुन' अर्थात् प्रेम आधिक्य की अवस्था । 'हुर' शब्द का अर्थ है – फ़ाज़िल होना, अधिक होना, उससे 'हुरे' शब्द का विकास हुआ है। द्वितीय पद में

'छांडान लूसुम' शब्द प्रयोग भी सन्देहास्पद है। यहाँ थक जाने, शरीर टूट जाने, अस्त होने अथवा व्यर्थ नष्ट होने का भाव नहीं है। यहाँ नकारात्मक बोध नहीं है अपितु स्वीकारात्मक आशांकुर का उदय दिखाना ही लल्लेश्वरी का प्रयोजन है।

कश्मीरी भाषा में एक शब्द है ' लसुन' अर्थात् जीवित रहना, जीवन शक्ति प्रदान करना, जीवन में प्रकाश की उपलब्धि होना, फलना फूलना आदि । इसी 'लसुन' शब्द का विकसित रूप है 'लोस्तुम' अर्थात् सफलता हाथ लगना, सार्थक होना, सिद्धि प्राप्त करना, जीवित रहना आदि।

अतः 'लोलु हुरे' तथा 'लोस्तुम' शब्द प्रयोगों से 'वाख' अपने वास्तविका पाठ शुद्ध रूप में हमारे ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन जाता है।

'पण्डित' शब्द का प्रयोग भी सोद्देश्य किया गया है। पण्डित ज्ञानी जन को कहते हैं, जिसे आत्मबोध है वही पण्डित है। यहाँ लल्लेश्वरी ने पण्डित शब्द का प्रयोग परमब्रह्म के लिये अथवा 'आत्म तत्त्व' के लिये किया है।

'नक्षत्र' का कश्मीरी शब्द प्रयोग 'न्यछत्र' है जो वास्तव में शुभ वेला अथवा उचित समयावधि का बोध कराता है। 'घर' शब्द का व्यापक अर्थ शरीर रूपी घर, काया या देह रूपी निवास (जहाँ आत्मा निवास करती है) के सन्दर्भ में किया गया है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है:–

लल ब्वद्धि आयस लोलु हुरे
छांडान लोस्तुम द्यन किहो रात
वुछुम पण्डित पनुने गरे
सुय मे रोटमस नेछत्र तु साथ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

मुझ लल को लोलधिक्य (प्रेमाधिक्य अथवा प्रेम उष्णता)
हुआ आत्मबोध
तलाश में हुआ जीवन सफल (दिन रात हुए सफल)
मैंने पण्डित को अपने ही घर (देह) में पाया
उसे ही मैं ने शुभ–वेला स्वीकारा ।।

शब्दार्थ :–

लोलु हुरे – 'लोल के आधिक्य से; प्रेम की उष्णता से; प्रेमाधिक्य से।

लोस्तुम – मूल कश्मीरी शब्द – 'लसुन' चमक उठना, फलना फूलना, जीवन सफल होना जिसका कोई समर (अ0) (फल) परिणाम, नतीजा निकले।

पण्डित – ज्ञानी, परम ब्रह्म, परम तत्त्व, परम पुरुष

न्यछत्र – संस्कृत मूल नक्षत्र, ज्योतिष में 27 नक्षत्र – (अश्विनी, रोहिणी, हस्त, चित्रा आदि)

साथ – शुभ वेला, समय, निश्चित समय जब नक्षत्रों का परस्पर सुयोग हो (शुभ मेल हो)

ooo

{ 04 }

کُس ڈِنگِ تہٕ کُس زاگِ
کُس سَر وَترِ تیلی
کُسٕ ہَرَس پوٗزِ لاگِ
کُس پَرَمہ پَد میلی

कुस डिंगि तु कुस ज़ागि
कुस सर वॅत्रि तेली ।
कुस हरस पूज़ि लागि,
कुस परम पद मेली ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 120, पृ0 200

कुसो डङ्गि तु कुसो जागि
कुसो सर् वत्रि तिलेया ।।
कुसो हरस् (पूज़ि लागि) ।
कुसो परमपद् मिलेया ।।

–'ललवाक्याणि' ग्रियर्सन वाख 78, पृ0 93 (स्टीन –बी)

कुस डेंगि तु कुस ज़ागि
कुस सर्वत्र तेली
कुस हरस पूज़ि लागि
कुस परम पद मेली ।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में 'डिंगि' शब्द का प्रयोग किया गयां है। डिंगि अर्थात् सुप्त, सो जाना, निद्रा मग्न होना। यह वस्तुतः 'डिंगि' शब्द नहीं है अपितु – डेंगि' शब्द है। कश्मीरी में एक शब्द है – डींज (धागे का गोलाकार में लिपटाया हुआ गोला) इसी लिये हम कहते हैं – पनु डींज (धागे का गोला) सारे धागे को एक बिन्दु के इर्द–गिर्द केन्द्रित करते हैं। इसी प्रकार ध्यानस्थ मुद्रा में साधक अपना समस्त ध्यान मन में केन्द्रित करता है। मन का एक ही बिन्दु पर केन्द्रित होना ही मन डेंगि कहलाता है।

'वत्रि तेलुन' कश्मीरी शब्द प्रयोग है और इसके कई अर्थ हैं – पीड़ा का एहसास हो जाना जो बराबर तड़पाता रहे।

संस्कृत में एक शब्द है – ' वक्त्र ' । पंच वक्त्र (वक्त्र) अर्थात् पंचमुखी देवता अर्थात् शिव । पंचवक्त्रा 'दुर्गा' का वाचक है। 'वत्र' शब्द का मूल इसी वक्त्र शब्द में है। सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय होता है :–

कुस डेंगि तु कुस ज़ागि
कुस़ सर्वत्र तेली
कुस हरस पूज़ि लागि
कुस परम पद मेली ।

हिन्दी अनुवाद :–

कौन केन्द्रित होगा, एक बिन्दु पर और कौन रहेगा ताक में / घात में ?
किस सरोवर में भीतरी वृत्तियाँ संचरित होंगी ?
कौन हर (शिव) को पूजा में अर्पित करेगा ?
कौन सा परम पद प्राप्त होगा ?

शब्दार्थ :–

डींगि – धागे (तागे) के गोले के समान एक बिन्दु पर केन्द्रित होना।

ज़ागि – ताक में रहना / घात में रहना

सर्वत्र तेली – सब जगत फैल जाये, अथवा सब स्थान पर पहुँच जाये

हर – शिव

परम – परम श्रेष्ठ

पद – पद्वी, स्थान

o o o

{ 05 }

مَن ڈِنگِ تہٕ اَکل جاگِ
ڈانٛڈی سرِ پنٛچہِ ینٛدرِ وَترِ تیٖلی
سو ویچار پونٛی ہرس پوٗزِ لاگِ
پرم پد چیتن شِو میٖلی

मन डिंगि तु अक्वल ज़ागि,
डॉड़्य सर पंचु यॅन्दि वत्रि तेलि।
स्व व्यच़ार् पोन्य हरस पूज़ि लागि
परम पद चे़तनु शिव मेली ।।

–'ललद्यद' प्रो० जयलाल कौल वाख 121, पृ० 200

मन् डङि्ग ता अकुल् ज़ागि
दाहुय पञ्च इन्दिय चिलेया ।।
पुण्ये हरस पूज़ि लगि ।
एहुय् चेतन् शिव् मिलेया ।।

–'ललवाक्याणि' ग्रियर्सन(स्टेन–बी०) वाख 79, पृ० 94

मन डेंगि तु अकुल ज़ागि
दॉन्ड़्यसर पंचवक्त्र येन्द्रियन तेली
सु प्वन्य हरस पूज़ि लागि
परम पद चे़तन शिव मेली ।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में 'डिंगि' शब्द के बदले 'डेंगि' शब्द होना चाहिए । पूर्व वर्णित वाख में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। 'डिंगि' – अर्थात् सुप्तवस्था से यहाँ कोई प्रयोजन नहीं। वस्तुतः यहाँ एक विशेष बिन्दु पर समस्त ध्यान केन्द्रित करने का प्रयोजन निहित है अतः 'मन डेंगि' का प्रयोग ही समुचित (appropriate) होगा। 'अक्वल– शब्द को कुल–अकुल से जोड़ कर तरह–तरह के अर्थ तत्त्वों के पर्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः यह शब्द –अकुल' है जो योग–साधना में शक्ति का वाचक है अथवा प्रकाशित बुद्धि का प्रतीक है।

'दॉण्ड सर' वस्तुतः सरोवर के जल को दूसरे स्थान तक पहुँचाने का माध्यम है जिसके द्वारा पानी निरन्तर दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है।

पंचवक्त्र देवता दॉण्ड सर के द्वारा अमृत जल समस्त शरीर में प्रवाहित करेंगे।

कुंडलिनी जागरण में भी पाँचवें चक्र 'विशुद्धाख्य' की अवस्था पर पहुँच कर वाणी स्वतन्त्र होकर वैखरी का रूप धारण करती है। पाँचवे चक्र, जिसे 'सरस्वती चक्र' भी कहते हैं की अवस्था में यह प्रेम सरोवर के उफान के रूप में पंचइन्द्रियों अथवा पंच तत्त्वों में संचारित होता है। वस्तुतः इस वाख से पूर्व लल्लेश्वरी कई प्रश्न मन की शंकाओं के रूप में हमारे सामने उपस्थित करती है और इस वाख में एक–एक करके शंकाओं का सामधान भी स्वयं करती है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

मन डेंगि तु अकुल ज़ागि
दॉन्ड़्यसर पंचवक्त्र येन्द्रियन तेली
सु प्वन्य हरस पूज़ि लागि

परम पद चेतन शिव मेली ।

हिन्दी अनुवाद –

ध्यानस्थ होगा मन और बुद्धि (स्वात्म चिन्तन के हेतु) चेतन
पंचइन्द्रियों में संचरित हों प्रवाहमान सरोवर के अमृत कण
वह सुफल (पुण्य) शिव को अर्पण करे
परम स्थान परद चैतन्य शिव की होगी प्राप्ति ।।

शब्दार्थ :–

अकुल – प्रकाशित बुद्धि

दॉन्ड्यसर – वह साधन जिसके द्वारा एक तालाब का जल दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाये ।

येन्द्रियन – 1. इन्द्रियाँ (शब्द, स्पर्श, रस, रूप गन्ध)
2. पंच भूत (आब, आतश, खाक, बाद, आकाश)

हर – शिव

चेतन्य – चैतन्य, चेतना, ज्ञान

परम पद – सर्वश्रेष्ठ स्थान ।

ooo

{ 06 }

شوٕ گُرٕ تاے کیشو پلنٕس
برٛہما پایرٕت وولٕسِس
یوٗگی یوٗگٕ کلِ پرزانٕس
کُس دیو اشوٕ وار پٮ۪ٹھ چیڈِس

शिव गुर तॉय केशव पलनस,
ब्रह्मा पायस्यन व्लुस्यस्।
यूगी यूगु कलि परज़ान्यस
कुस दीव अश्वुवार प्यठ चेड्यस ।।

—'ललद्यद' — प्रो0 जयलाल कौल — वाख 121, पृ0 202

शिव गुर तय कीशव पलुनस
ब्रह्मा पायर्यन व्लॉस्यस
यूगी यूग–कलि परज़ान्यस ।
कुस दीव अश्ववार प्यठ चड्यस।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 65, पृ0 144

शिव घोळो केशव् ।। पलानि ।।
ब्रह्मा ति पायळयन् विलसोस्
योगी योगकलि पर्जानि
अशववार् ।। कुसो मिट्ट खथोस ।

—'ललवाक्यानी' —ग्रियर्सन, स्टेन महोदय द्वारा दिया गया पाठ वाख 19, पृ0 36

शिव गॊर तय केशव पालनस
ब्रह्मा पयर्यन व्लस्य्स ।
यूगी यूगु कलि प्रॅज़ जान्युस
कुसु दीव अथसवार प्यठ चाड्यस

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद –

' शिव गुर तय केशव पलनस'

का प्रयोग लगभग सभी विद्वान जनों ने समान रूप से किया है। मैं इस शब्द–प्रयोग से सहमत नहीं हूँ ।

यह 'शिव गुर' शब्द का प्रयोग नहीं है अपितु 'शिव गोर' शब्द–प्रयोग है जिसका अर्थ है शिव जो स्रष्टा है, लीला रचियता है जैसे हम कहते हैं – 'गिन्दन गॊर'. 'तमाश गॊर' इत्यादि 'गॊर' अर्थात् आकार देने वाला, निर्माता, बनाने वाला आदि । केशव तो पालन हार हैं।

द्वितीय पद में 'पायस्यन' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका मूल 'पायिर' अर्थात् रिकाब है (जिस में अश्वारोही अपने पैर टिकाता है) यह शब्द प्रयोग भी सहीं नही है । यह वास्तव में 'पैयस्यन' शब्द है जो शरीर के उपावचय (Body metabolism) का वाचक है। 'ब्रह्मा पैयस्य वोलस्यस' अर्थात् ब्रह्मा जीव के शक्ति तत्त्वों को उत्तेजना प्रदान करेगा। ब्रह्म सम्पूर्ण उपावचय (metabolism) को हरकत में लायेगा ।

प्रस्तुत वाख के तृतीय पद का अन्तिम शब्द विचारणीय है। 'पर ज़ान्यस' का अर्थ है – पराया समझना, अलग मानना। अपने से भिन्न मानना। यह अर्थ वाख में ठीक नहीं बैठता। अतः 'पर ज़ान्यस' का प्रयोग यहाँ उचित नहीं है क्योंकि पर + ज़ान = पराया से इसका कोई

सम्बन्ध नहीं है। इस शब्द का सम्बन्ध परज़ नावुन अथवा प्रज़नावुन शब्द से है जिसका अर्थ है पहचान लेना, समझना, ढूँढ निकालना ।

यहाँ शब्द प्रयोग प्रॅज़ + ज़ान्य (प्रॅज़ का अर्थ है चमक, द्युति, कान्ति जो प्रज्जवलित है, प्रकाशमान अर्थात् सच्ची पहचान है। प्रज़ + ज़ान्य शब्द से ही प्रज़ + नाव (पहचान लेना) शब्द का विकास हुआ है।

'पालनस' शब्द का विकास 'पलना' या 'पालना' शब्द से हुआ है। जिसका अर्थ पालन–पोषण करना है।

सभी विद्वान बन्धुओं ने इसे 'ज़ीन' (पलान, चारजामा) के अर्थ में लिया है। 'पालना' और 'पलान' में पर्याप्त अन्तर है। ये सम–शब्द नहीं है। यहाँ 'पालना' शब्द का प्रयोग पालन–पोषण के अर्थ में किया गया है।

यहाँ शिव तत्त्व और परमशिव की पहचान आवश्यक है। प्रस्तुत वाख में शिव का प्रयोजन मंगल, कल्याण, सुख अथवा वेद के अर्थ में हुआ है और अन्तिम पद में उस महान देवता के प्रति संकेत है जिसे परमशिव (ओम्कार, परम ब्रह्म, शिव) कहते हैं। शैवदर्शन के अनुसार आत्म स्वरूप शिव प्रत्येक जीव में वास करता है और उसी की केन्द्रित या एकत्रित शक्ति परमशिव का रूप धारण करती है। 'चड्यस' शब्द के बदले इस में 'चाड्यस' शब्द का प्रयोग होना चाहिए । चड्यस का अर्थ चढ़ना। चाड्यस का अर्थ है चढ़ाना अर्थात् किस देव को इस पर चढायेगा।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

शिव गोर तय केशव पालनस
ब्रह्मा पयर्‌यन व्लस्य्‌स ।
यूगी यूगु कलि प्रॅज़ जान्युस
कुसु दीव अथसवार प्यठ चाड्यस ।।

हिन्दी अनुवाद –

शिव है स्रष्टा तो केशव पालक
ब्रह्म (शरीर के) शक्ति स्रोतों को करेंगे उत्तेजित
योगी योग ध्यान से पहचान पायेगा
कौन से देव को इस पर सवार करेगा

शब्दार्थ –

पालनस – पालना पोषण करने वाला
पयस्यन – उपावचय (body metabolism)
वोलस्यस – उत्तेजना प्रदान करना
कलि – मूल कश्मीरी 'कल' – ध्यान, इच्छा, विचार
प्रज़ ज़ान्यस –('परज़ु नाव्यस) पहचान पायेगा
अथसवार – इसपर सवार होगा
चाड्यस – चढ़ाना ।

ooo

{ 07 }

اناہت کھ سوروٗپ شُنیاے
یَس ناو نہ وَرَن نہ گُتھر نہ روٗپ
اَہم وِمرش ناد بِنٛدے یَس وۄن
سُے دیوٗ اشوٕوار پیٹھ چیڑیس

अनाहत ख–स्वरूप शुन्यालय
यस नाव न वरण न गुथुर न रूप ।
अहम् विमर्शनाद बिन्दुय यस वोन
सुय दीव अश्ववार प्यठ च्यड्यस ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 123, पृ० 204

अनाहत् ।। ख स्वरूप ।। शून्यालय।।
यस ।। नाव् ।। ना रूप।। वर्ण ना गोत्र्।।
अहु ।। निह् ।। नाद बिन्द् । तयवानो।।
एहुय् ।। देव् तस् ।। पिट्ठ खथोस्।।

–'ललवाक्याणि' ग्रियर्सन(स्टेन बी०) वाख 20, पृ० 36

अनाहत ख–स्वरूप शून्यालय
यस नावं न वर्ण न गुथुर न रूप
अहं विमर्श नाद–व्यंदुय यस वौन
सुय दीव अश्ववार प्यठ चड्यस ।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 66, पृ० 145

अनाहत क्ष ह स्वरूप शुन्यालय
यस नाव न वर्ण न गुथुर न रूप
अहं व्यमर्श नाद–बिन्दुय यस वौन
सुय दीव अथसवार प्यठ चाड़्यस/खोतुस ।

– लेखिका

'क्ष' और 'ह' तांत्रिक शब्दावली है । क्ष, ह उस स्थान के वाचक अक्षर हैं जहाँ अर्द्धनारीश्वर रूप में शिव और शक्ति परस्पर सम हो जाते हैं और यह स्थान है लल – अर्थात् ललाट जहाँ ब्रह्मरन्ध्र (दशम द्वार) की स्थिति कुंडलिनी जागरण के अभ्यास में मानी जाती है। अर्द्धनारीश्वर शिव–शक्ति का संयुक्त रूप है। अर्द्धनारीश्वर अथवा नटेश्वर के सूचक प्रतीक ही 'क्ष' और –ह' हैं और इसकी दिव्यानुभूति साधक को तब होती है जब पंचम चक्र को पार कर वह ब्रह्मरन्ध्र के कपाट खोलने में सफल हो जाता है। साधक की सफलता इसी बात में निहित रहती है कि वह योग शक्ति के बल पर इस दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करे, उसके पश्चात् ही सहस्रार अर्थात् शून्यालय में प्रवेश पा कर (बून्द सागर में विलीन होकर) महाशून्य का स्थायी अंग बन जाता है। ब्रह्मरन्ध्र के खुलते ही सहस्रार चक्र से अमृतरस या कैलास वासी शिव के मस्तक में वास करने वाले चन्द्रमा से अमृततत्त्व प्रवाहित होता है।

कुण्डलिनी जागरण में चतुर्थ चक्र 'अनाहत' कहलाता है। हृदय के पास बारह दल वाला अनाहत चक्र है। 'अनाहत' से अभिप्राय है – आघात रहित, जो आघात से उत्पन्न न हो । योगियों को सुनाई देने वाली एक आन्तरिक ध्वनि–ओ३म् शब्द का अथवा ओ३म् ध्वनि अर्थात् 'प्रणव' का वाचक शब्द। इसके लिये दूसरा पर्यायवाची शब्द है – 'अनहद' ।

कहीं–कहीं 'अनाहत' के बदले –'अनहद' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। इसे ही कहते हैं नाद बिन्दु ।

'अहं विमर्श' वस्तुतः दिव्यानुभव अथवा निजी पहचान, आत्मज्ञान, स्वानुभव ज्ञान का वाचक है। 'नाद बिन्दु' तन्त्र शास्त्र में पारिभाषिक शब्द है। कुंडलिनी जागरण में सिद्धि प्राप्त कर योगी के शरीर में अद्‌भुत स्फूर्ति का प्रवेश होता है। मुखमण्डल तेजप्रद और आँखें दिव्य–ज्योति युक्त हो जातीं हैं। इस अद्‌भुत स्फूर्ति का पहला अहसास ही 'नाद' कहलाता है और जब यह स्फूर्ति अंग–अंग में प्रवेश कर साधक को लयावस्था में पहुँचा देती है यह वस्तुतः दिव्यानुभूति का प्रथम विस्फोट है। नाद से दिव्यानुभूति का जो विस्तार होता है उसके प्रकट रूप को ही बिन्दु कहते हैं। योग शास्त्र में नाद–बिन्दु का केन्द्र ब्रह्मरन्ध्रं है। ब्रह्मरन्ध्र के खुल जाने पर ही अर्थात् जब योगी को ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश होता है तो नाद–बिन्दु (अद्‌भुत लावण्यमय कान्ति, चमक) का अहसास होता है। अतः नाद–बिन्दु अपने आप में एक विशिष्ट स्फूर्ति दायक योगावस्था की अवस्थिति का वाचक शब्द प्रयोग है।

'बिन्दु' शब्द का अन्य अर्थों के साथ एक और अर्थ महत्त्वपूर्ण है – 'शून्य' – देखा जाये तो अहं विमर्श (आत्मबोध) के बाद शेष रहने वाली तो दिव्य प्रतीत ही है और उस दिव्य प्रतीति का वाचक शब्द है –नाद–बिन्दु।

"नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप है बिन्दु जो तेज का प्रतीक है। बिन्दु के तीन प्रकार हैं – इच्छा, ज्ञान और क्रिया। नाद और बिन्दु की यह क्रीड़ा ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।"

(हिन्दी साहित्य कोश – भाग–1 ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी –1985 ई0– पृ0 431)

वाख के प्रथम पद में 'ख' शब्द का प्रयोग किया गया है जो

शब्द होना चाहिए – ' अनाहत क्ष ह '।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

अनाहत क्ष ह स्वरूप शुन्यालय
यस नाव न वर्ण न गुथुर न रूप
अहं व्यमर्श नाद–बिन्दुय यस वॊन
सुय दीव अथसवार प्यठ चाड्यस/खॊतुस ।

हिन्दी अनुवाद –

हृदय चक्र से ऊपर (त्रिकुटी से आगे) 'क्ष' 'ह' स्वरूप
फिर सहस्रार
जिसका न नाम है, न वर्ण, न वंश, न रूप
जिसे कहते हैं – अहं–विमर्श–नाद–ब्यन्द
वहीं आत्मदेव इस पर सवार होगा ।

शब्दार्थ –

अनाहत – कुंडलिनी चक्र, चतुर्थ चक्र – स्थान हृदय
क्ष – ह – तन्त्र शास्त्र से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली जो अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की पहचान है। 'ह' विशुद्ध चक्र का भी द्योतक है।
शून्यालय – सहस्रार, आकाश मण्डल, शून्य मण्डल, यह सातवें अर्थात् अन्तिम चक्र का वाचक शब्द है।
वर्ण – बाह्य रूप, रंग
गुथुर – गोत्र, कुल, वंश
अहं व्यमर्श – आत्मबोध, स्वानुभव, सहज ज्ञान

अनाहतचक्र
(अर्थात्)
द्वादशदल पद्म
CARDIAC PLEXUS
सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रम्हनाड़ी
अनारमी के अनुसार चक्र का स्थान ।
षट्कोणयंत्र
नीला
शारदा
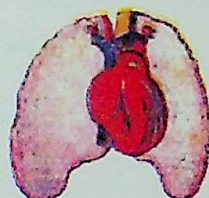
नाद–बिन्दुय – विशिष्ट पारिभाषिक शब्द,
नाद – स्फोट ;
बिन्दु – विस्तार, प्रकाश (स्थान – ब्रह्मरंध्र)
नाद – शक्ति; बिन्दु – शिव (अर्द्धनारीश्वर
स्वरूप शिव शक्ति का सम्मितलत रूप) ।

दीव – देवता, (आत्मदेव), परमात्मा तत्त्व, चेतनातत्त्व

चड़्यस – चढ़ जायेगा

अथसवार – इस पर सवार होगा ।

ooo

{ 08 }

یِوٕ تیر ژلہِ تِم امبر ہیتا
بوچھ یِوٕ ژلہِ تی آہار ان
ژِتا سوپر ویژارس پیتا
ژِتا دیہس وان کیاہ ون

यवु तुर चलि तिम अम्बर ह्यता
ब्वछि यवु चलि ती आहार अन् ।
चि़त्ता स्वपरु विचा़रस प्यता
चि़ता दीहस वान क्याह वन ।।

—'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल– वाख 33, पृ0 98

यवा तूळ् चल्लि ते अम्बुर् ।। हिता।।
छ्यध् चलि ते आहार ।। अन्न्।।
चि़त्ता स्वपर विचा़रस् पित्ता
चि़न्ता देहस् वन् क्यावन ।।

—'ललवाक्याणि' – ग्रियर्सन (स्टेन –बी) वाख 20, पृ0 50

यवु तुर चलि तिम अम्बर ह्यता
क्ष्वद यवु गलि तिम आहार अन्न
च्यता स्व–पुर व्यचा़रस प्यता
चे़नतन (छ़नतन) यि दिह वनकावन ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 81, पृ0 166

यॊव तुर चालि त्युथ अम्बर ह्यता
ख्युवद यॊव गलि तमि आहार अन
च्यता स्वपर व्यचारस प्यता
चेनता देहस व्वन्य क्याह वॊन ।।

– लेखिका

'यवु' शब्द वास्तव में संस्कृत **'यो'** सर्वनाम है जिसका अर्थ है – यह

'तुर' भागती नहीं, सही जाती है अथवा असहनीय होती है।

चतुर्थ पंक्ति (चिता दीहस वान क्या वन) विवादास्पद शब्द प्रयोग है।

'वान' शब्द के कई अर्थ हैं। शोक के सन्दर्भ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है ।

वाख का चतुर्थ बन्ध इस प्रकार है –

'चेनता देहस व्वन्य क्याह वॊन '

अपने देह का तनिक विचार कर कि अब क्या महसूस होता है, अथवा अब कहाँ महसूस होता है। अब अनुभूति किस रूप में महसूस होती है।

17वीं शताब्दी के प्रसिद्ध योगिन रोप द्यद का वाख देखिये–

यॊव तुर चलि ही तिमय वल अम्बर
यॊन बोछि चलिही आसख तृयप्त
तिमय आहार भोक्त योक्ति यूग कर
रूग गलनैय आसख मोख्त

और लल्लेश्वरी के वाख का पाठ शुद्ध रूप यह हो सकता है :–

यॊव तुॖर चालि त्युथ अम्बर ह्यता

ख़्य्वद यॊव गलि तमि आहार अन

च़्यता स्वपर व्यचारस प्यता

चे़नता देहस व्यन्य क्याह वोन ।।

हिन्दी अनुवाद :–

जो शीत सह सके वैसा वस्त्र धारण कर

जिससे भूख समाप्त हो जाये उस प्रकार का आहार कर

हे चित! अपने आत्मरूपी परमात्मा का सही (पहर – काल, समय) समय पर विचार कर ले

तनिक सोच, देह को अब क्या ज्ञात हो रहा है।

शब्दार्थ :–

अम्बर – वस्त्र

ख्यॊद (सं० क्षुधा) – भूख

आहार (सं० खाने के पदार्थ) भोजन

च़्यता – चित्त

स्व पर – **स्व** – आत्मा **पर** – परमात्मा

विशेष टिप्पणी – कण्ठकूप में मुख के भीतर से उदर में वायु तथा आहार पहुँचाने के लिये जो कंठ छिद्र होता है वहीं कंठकूप कहलाता है। योग द्वारा इसको वश में करने तथा इसपर नियंत्रण पाने से भूख तथा पिपासा से मुक्ति मिलती है।

ooo

{ 09 }

پَوَن پوٗرِتھ یُس اَنہِ وَگِہ
تَس بوٗنا سپرٕشہٕ نہ بوٗچھہِ تہٕ تریش
تہٕ یَس کَرُن اَنتہِ تَگِہ
سَمسارَس سُئے ترٛیہِ نیچھِہ

पवन पूरिथ युस अनि वगि
तस् ब्वना स्पर्शि न ब्वछि तु त्रेश ।
ति यस करुन अन्त तगि,
संसारस सुई ज़्ययि न्येछ ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 51, पृ0 118

पवन पूरिथ युस अनि वगि
तस ब्ववि ना स्पर्श न ब्वछि न त्रेश
यि यस करुन अन्ति तगि
संसारस सुय ज़्यवि नेछ ।।

– लेखिका

योग साधना में प्राणायाम योग का अपना विशिष्ट महत्त्व है। प्राणायाम का समबन्ध प्रश्वास और निश्वास की अनवरत क्रिया से है। श्वास का तीन भागों में बट कर अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचक की अवस्था में नियंत्रित होना ही साधक का लक्ष्य रहता है।

इस श्वास–प्रश्वास की क्रिया को कंट–कोप (कौन्य) पर नियंत्रण में लाया जाता है।

अलि जिह्व के पास कंठ से तनिक ऊपर वह विशेष स्थान है जहाँ से श्वास नालिका का छिद्र ऊपर की ओर तथा मुख विवर नीचे से निकलता है। इस दो राहे पर कच्छप आकृति की कूर्म नाड़ी होती है । इसे पंचम चक्र कहते हैं जिसके देवता पंच वक्त्र (पंचमुख शिव) कहलाते हैं। यहाँ ध्यानस्थ रहने से अर्थात् कूर्म नाडी के नियंत्रण से न भूख रहती है और न प्यास, न स्पर्श (ठंडा या गरम) का आभास रहता है। अभ्यासरत रहने से स्थिरता आ जाती है। यही विशुद्ध चक्र है।

प्रस्तुत वाख की चतुर्थ पंक्ति में 'अन्त' के बदले 'अन्ति' शब्द होना चाहिए। अन्त का अर्थ है मृत्यु के बाद और 'अन्ति' का अर्थ है भीतर से; अन्दर से । पाठ के अर्थ को सही रूप से समझने की आवश्यकता है। अर्थ समझने के हेतु तनिक गड़राई में जाने की आवश्यकता है। पाठ इस प्रकार से है :–

पवन पूरिथ युस अनि वगि
तस ब्वि ना स्पर्श न ब्वछि न त्रेश
यि यस करुन अन्ति तगि
संसारस सुय ज़्यवि नेछ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

(कूर्म नाड़ी कच्छपाकर (कंठ कोप) अर्थात् पंचम चक्र के पास)
जो श्वास प्रक्रिया को नियंत्रण में ला सके
उसे न भूख रहती है न प्यास और न स्पर्श का आभास
जो इस क्रिया को भीतर से निष्पन्न कर पायेगा

उसे ही भव में प्राप्ति होती है मोक्ष की ।

शब्दार्थ :–

वगि अनुन – नियंत्रित करना, रास्ते पर लाना, अपने पक्ष में करना

स्पर्श – गर्म अथवा ठण्ड का एहसास

अन्ति – भीतर से, अन्दर से

ज़्यवि – जीवित रहेगा, जीवन प्राप्ति

नेछ – सफल, शुभ, कामयाब, मनोरथ–सिद्ध ।

०००

{ 10 }

اَتھہ مَبا تراوُن کھَربا
لوُکہ ہُنز کوَنگہ وار کھیٚیی
تَتہ کُس با داری تھَر با
ییتہ نٔنِس کرتَل پییی

अथु मबा त्रावुन खरबा
लूकु हुँज़ क्वँगवॉर खेयी
तति कुस बा दारी थर बा
येति नॅनिस करतल पेयी ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 35, पृ० 100

अथोम ब्राँच़ रावि मन खर हबा
लूकि हुंज़ क्वंगु वॉर खेयी
तति कुस बा दॉरि थ्यर हबा
येतिननस कॉर तल पेयी ।।

– लेखिका

वाख के बहुत समय तक मौखिक रूप में रहने के कारण इसका मूलरूप विकृत हो चुका है । कश्मीरी भाषा में एक शब्द है – ' थमुन ' (हिन्दी, उर्दू – थम जाना) और जो थमता नहीं उसे 'अथोम' कहते हैं। इस वाख की पहली पंक्ति का पाठ मेरे विचार से इस प्रकार है –

अथोम ब्राँच़ रावि मन खर हबा

निरन्तर भ्रान्तियों में उलझा मन रूपी गधा भटक कर अनमोल ज्ञान की केसर वाटिका को चर जायेगा । मन के सन्दर्भ में यदि देखें तो चंचलता ही सांसारिक जीवन का मुख्य लक्षण है। मन वह गधा है जो रुकता नहीं अपने ही विचरण में उलझ कर रह जाता है और भ्रान्तियों में खो जाता है। गधा तो मात्र संकेत है मुख्य बात मन के साथ जुड़ी है। इसी लिये पाठ के मूल रूप के विषय में सन्देह हो जाता है ।

मेरे विचारानुसार सारे वाख का मूल रूप वास्तव में इस प्रकार होना चाहिए –

अथोम ब्राँच़ रावि मन खर हबा
लूकि हुंज़ क्वंगु वॉर खॆयी
तति कुस बा दॉरि थ्यर हबा
यॆतिननस कॉर तल पॆयी ।।

हिन्दी अनुवाद –

निरन्तर भ्रन्तियों में उलझ कर गधा (मन) भी भटक जाता है
नशट कर देता है ज्ञानी रूपी अनमोल केसर वाटिका
वहाँ कौन धैर्य धारण कर स्थिर चित्त रह सकता है
जहाँ गरदन लुढक जाती है, छा जाता शैथिल्य ।

पूरे वाख में तीन पदों में पाठ्यन्तर हो जाता है –

	दिया हुआ पाठ	**परिवर्तित पाठ**
पहला पद–	अथॅ मबा त्रावुन खर बा	अथोम ब्राँच़ रावि मन खर हबा
द्वितीय –	लूक हँज़	लूकि हँज़
तृतीय –	तति कुस बा दारी थर बा	तति कुस बा दॉरि थ्यर हबा

चतुर्थ – यति नॅनिस करतल पॅय्यी यतिनॅनस कॉर तल प्ययी

शब्दार्थ :–

अथोम– जो थमता नहीं हो

ब्रॉंच् – भ्रान्ति, अयथार्थ ज्ञान, अस्थिरता, सन्देह

दॉरि – धैर्य, धैर्य धारण करना,

कश्मीरी – दॉर करुन

जैसे – अमिस निश कुस करि दॉर

थ्यर – स्थिर, सदा रहने वाला, मज़बूत

कश्मीरी – पोशिवुन

क्वंगुवॉर – केसर वाटिका – यहाँ संकेत ज्ञान रूपी केसर वाटिका की ओर है।

लूकि हुँज़् – जो अनमोल है, 'लूकि' से ही –लूकरि' शब्द बना है।

अनमोल वस्तु जो सामान्यतः उपलब्ध नहीं – 'लूकि' कहलाती हैं।

ooo

{ 11 }

گیانہٕ مارگ چھَے ہاکہٕ وآر
دِزیس شَمہ دَمہٕ کرِیہِ پنٛیہ
لاما ژکرٕ پوٚش پرآنی کرِیہ وآر
کھینہٕ کھینہٕ موٚزی وآرے چھیٚنی

ग्यानु–मारग छय हाकु वॉर
दिज़्यस शमु–दमु क्रेयि पॅन्यु
लामा चॆक्रु पोश प्रॉन्य क्रेयि–वॉर
ख्य्नु–ख्य्नु म्वची वॉरुय छेनि ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जियालाल कौल – वाख 62, पृ0 132

ज्ञानु मार्ग छय हू ह्वकु वॉर
दीज़्यस शम दमु क्रेयि पोन
लमान चॆक्रस पोश प्रानि क्रेयि दारि ।
ख्यनु–ख्यनु म्वचि़ तु वॉरी छेनि ।।

– लेखिका

वास्तव में इस वाख का सम्बन्ध प्राणायाम की प्रश्वास–निश्वास क्रिया के साथ है। 'हू' ध्वनि विशेष प्रश्वास को द्योतित करती है और –हा' ध्वनि विशेष निश्वास क्रिया को ।

प्राणायाम में 'हू' और 'हा' का अपना विशिष्ट अर्थ है। यह 'हू–हा' या 'हू–हो' की क्रिया तब तक निरन्तर चलती रहती है जब तक

जीव भौतिक धरती पर रहते हुए भी विद्यमान रहता है। 'हू' और 'हा' के मध्य विश्राम या अन्तराल कुम्भक क्रिया है।

लकड़ी का बनाया गया तनिक बारीक कील 'पॉनॅ' कहलाता है। तृतीय पंक्ति में 'लामा चक्र' प्रयोग हुआ है जो विश्वसनीय नहीं है यह वास्तव में 'लमान च़क्रस' शब्द प्रयोग हुआ है। इस प्रकार क्रेयि वॉर' शब्द नहीं है यह 'क्रयि दारि' शब्द है।

अब इस वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार हो सकता है :–

ज्ञानु मार्ग छय हू ह्वकु वॉर
दीज़्यस शम दमु क्रेयि पॉन
लमान चॅक्रस पॉश प्रानि क्रेयि दारि ।
ख्यनु–ख्यनु म्वचि़ तु वॉरी छ़ेनि ।।

हिन्दी अनुवाद –

ज्ञान मार्ग तो घट (आधार) है प्रश्वास–निश्वास क्रिया का
इसे शम–दम (प्राणायाम) क्रिया रूपी कील ठोंक देना
खींच रहा है जीवन रूपी चक्र को कोल्हू के बैल की तरह
धीरे धीरे उऋण हो जाओगे और छूट जाओगे आवागमन से।

टिप्पणी :–

1. **'वॉर'** – का अर्थ साजग़ार नहीं है।
2. **'वॉर'** – का अर्थ है घट जैसे म्यच़वॉर, मिलिवॉर' तिलवॉर, आदि।
3. **वॉर** – शब्द का प्रयोग आज भी मिट्टी के छोटे विशिष्ट बरतन के लिये किया जाता है।
4. **हू–होकु** – यह प्रश्वास–निश्वास की क्रिया के बोधक शब्द है।

इनका सम्बन्ध प्राणायम प्रक्रिया से है।

लल कहती है कि यह ज्ञान मार्ग तो घट है अर्थात् आधार है हू – होकु (प्रश्वास–निश्वास प्रक्रिया) का । ढोंक दे इस पर शम–दम रूपी कील । नहीं तो जन्म चक्रों में ही कोल्हू के बैल की तरह लगे रहोगे। शम–दम क्रिया से कर्म फलों से उऋण हो जाओगे और मुक्त हो जाओगे आवागमन के चक्र से।

शब्दार्थ :–

हू हुवकु (हुक्का) – हू (साँस भीतर लेते समय स्वतः निसृत ध्वनि विशेष) हो (साँस छोड़ते समय स्वतः उच्चरित ध्वनि विशेष)

शमु–दमु – श्वास–नियन्त्रण की प्रक्रिया ।
शम – एकाग्र चित की अवस्था
दम – कुम्भक क्रिया – श्वास अवरुद्ध रखना

पोन – लकड़ी का कील

दारि – लेन–देन (दारुँ – होर)

वॉरी छ़ेनि – आवागमन के चक्र से मुक्ति मिलेगी

पोश – जानवर

निष्कर्ष – सम्पूर्ण 'वाख प्राणायाम की क्रिया से जुड़ा है और प्रश्वास–निश्वास की अविरल क्रिया पर आधारित है। हू – हुवक् वॉर (हू – ह्वकु का घट) मूलतः मानव शरीर की ओर संकेत है जिसमें प्रश्वास–निश्वास की क्रिया अ़विरल चलती रहती है। संयमित कीजिए इस क्रिया को ।

o o o

{ 12 }

لَل بو ژایَس سومَن باغ بَرَس
وُچھم شِوَس شکتھ میلِتھ تہٕ واہ
تٔتی لَے کٔرِم امرِتہٕ سَرَس
زِندَے مرس تہٕ مے کرِ کیاہ

लल ब्व चायस स्वमनु बागु बरस
वुछुम शिवस शखॅथ मीलिथ तु वाह
तॅति लय कॅरुम अमरय्तु सरस
ज़िन्दय मरस त मे करि क्याह ।।

–'ललद्यद' प्रो० जयलाल कौल वाख 131, पृ० 216

लल ब्व चायस स्वमन भूर् भुवस
वुछुम शिव शक्त मीलिथ स्वः
तत् लय कॅरुम अमर्यतु सार्स
ज़िन्दु देह मरस तु कॅहस्यम क्या ।।

– लेखिका

यह पूरा वाख गायत्री मन्त्र पर आधारित है ।

पहली पंक्ति – 'लल ब्व चायस स्वमन बाग बरस '

यह वास्तव में गायत्री मन्त्र के आधार पर ·

'लल ब्व चायस स्व मन भूर् भुवस

द्वितीय पंक्ति – 'वुछुम शिवस शक्त मीलिथ तु वाह'

यह वास्तव में इस प्रकार है :–

'वुछुम शिव शक्त मीलिथ स्वः

(ओम् भूर्भुर्व स्वः तत् सवितुऱ् वरेण्यं)

तीसरी पंक्ति – 'तॅत्य लय कऱ्म अमृत सरस'

यह वास्तव में इस प्रकार है :–

तत् लय कॅरम अमृत सारस'

चतुर्थ पंक्ति – 'ज़िन्दै मरस तॅ म्य करि क्या '

यह वास्तव में इस प्रकार है –

'ज़िन्द देह मरस तु कॅहस्यम क्या ।।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार स्थिर होता है –

लल ब्व चा़यस स्वमन भूर्भुवस

वुछुम शिव शक्त मीलिथ स्वः

तत् लय कॅरुम अमऱ्यतु सारस

ज़िन्दु देह मरस तु कॅहस्यम क्या ।।

हिन्दी अनुवाद –

लल मैं भू लोक से अपने मन रूपी भुवः लोक में आई

देखा मैंने स्वः में शिव शक्ति का मेल

तत् में मैं ने लय रूप में मोक्ष सार पाया

जीते जी मैंने देह त्यागा (आत्मा को पहचाना)

मुझे कयामत से क्या भय ?

टिप्पणी :–

लल – ललाट – माथे को कहते हैं। शिव शक्ति का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप जिसको 'कामकला रूप' भी कहते हैं जिस जगह पर स्थित है उस जगेह का नाम लल है। उसी जगह पर शिव कली रूप में

है जब शक्ति का इसके साथ मेल होता है तो 'कलीम' कहलाता है।

शब्दार्थ :–

भूलोक – पृथ्वी लोक, भूमि

भुवर्लोक – अन्तरिक्ष लोक

स्वः – स्वर्ग, देवलोक

तत् – जिसको वेदों ने तत् नाम से पुकारा है अर्थात् वह – ब्रह्म ।

अमृत सारस – मोक्ष के अमृत का, यथार्थ बात का, मोक्ष के निचोड़ का

कॅहस्चम – भीषण खौफ़

सम्पूर्ण वाख वस्तुतः गायत्री मन्त्र के मूल तथ्य एवं सार पर आधारित है। अमृतपान करते समय आनन्द की उपलब्धि एवं जीते जी मर कर अमर होने का एहसास अलौकिक और अद्भुत है। इस अवस्था पर पहुँचे हुए योगी को काहे का डर और काहे की घबराहट। वह तो मोक्ष की पदवी पाकर कैलास का स्थायी वासी बन जाता है।

लल्लेश्वरी योग साधिका थी, साधना की प्रत्येक अवस्था से पूर्ण परिचित। वह शुष्क ज्ञान की बात नहीं करती अनुभूत यथार्थ को प्रकट करती है।

ooo

{ 13 }

اژھن آے تہ گژھن گژھے
پکن گژھے دیت کیاو راتھ
یوڑے آے تہ توری گژھن گژھے
کینہہ نہ تہ کینہہ نہ تہ کینہہ نہ تہ کیاہ

अछ़्यन आय तु गछ़न गछ़े
पकुन गछ़े द्यन क्याव राथ
योरय आय तु तूर्‌य गछुन गछ़े
कॅंह न तु कॅंह न तु कॅंह नतु क्याह ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 7, पृ० 68

अछ़्यन आय तु गछु न गछ़
पकुन गछ़े द्यन किहो राथ
योरय आय तु तूर्य गछुन गछ़े
कॆंह नतु कॆंह नतु कॆंह नतु क्याह ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 78, पृ० 162

अछ़्यन आयि तु गछ़नु गछ़े
पकान गछ़े द्यन क्योहो राथ
योव रायि आयि तुरीय गछुन गछ़े
कॅंह नतु कॅंह नतु कॅंह हुतु क्यात ।।

– लेखिका

'अछ्यन' शब्द का शाब्दिक अर्थ है निरन्तर, लगातार । प्राणी के जन्म लेने की स्थिति निरन्तर चलती रहती है। प्रत्येक प्राणी का आगमन निश्चित समय के लिये है । अवधि समाप्त होते ही चले जाते हैं।

'गछ़न शब्द का शाब्दिक अर्थ कि 'जब जाना निश्चित है'।

'पकन गछ़े' भी सन्देह जनक है यह वास्तव में 'पकान गछ़े' अर्थात् चलता रहेगा । आने और निश्चित समय पर जाने की प्रक्रिया चलती रहेगी ।

वाख की तीसरी पंक्ति का पाठ अशद्धि के कारण अर्थ खण्डित हुआ है । इस पंक्ति का पहला शब्द 'योरय' नहीं है अपितु ' यो रायि' है।

यो – सं० (जिस)
रायि – उद्देश्य, मतलब

आगे वाख में 'तूर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है यह भी भ्रामक है। वास्तव में शब्द है 'तुरयियि' अर्थात् तुर्यावस्था ।

चतुर्थ पंक्ति में ' कॅंह हुत' शब्द का प्रयोग नितान्तावश्यक है और यही शब्द छोड़ दिया गया है। 'कॅंह हुत' अर्थात् कुछ आहुति स्वरूप चढ़ाया। संकेत भौतिक जीवन के आकर्षणों अथवा इन्द्रिय सुख की ओर है। वासना दग्ध भोगानन्द की आहुति चढ़ा दीजिये मुक्ति के कपाट स्वयं खुल जायेंगे। इस शब्द खण्ड का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि – कुछ है तो क्या ?'

मेरे विचार से वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत हो जाता है –

अछ़्यन आयि तु गछ़नु गछ़े
पकान् गछ़े द्यन क्योहो राथ
योव रायि आयि तुरीय गछुन गछ़े

कॅंह नतु कॅंह नतु कॅंह हुतु क्यात ।।

हिन्दी अनुवाद :-

निरन्तर आते रहे और निश्चित समय पर जाते हैं
सिलसिला चलता रहा दिन रात का
जिस उद्देश्य से आये तुरीय अवस्था में जाना चाहिए
कुछ न कुछ तो है कुछ है सो क्या ?
अथवा
कुछ नहीं है, कुछ नहीं, कुछ है तो क्या ?

शब्दार्थ :-

गछ़ न – जब जाना हो (निश्चित समय पर
यो रायि – जिस उद्देश्य से
तुरीय – तुरीय अवस्था (चतुर्थ अवस्था, वेदान्त के अनुसार)
हुत – आहुति देना, होम, कुछ है सो क्या ।
क्यात – कुछ ।

ooo

{ 14 }

لل بو لوٗسس ژھاران تہٕ گوران
ہل مےٚ کوٚرمس رسہٕ نِشہٕ تہٕ
وُچھن ہیوتمس تاڈی ڈیٹھمس برن
مےٚ تہٕ کل گنیہٕ زوگمس تتی

लल ब्व लूसुस छ़ारान तु गोरान
हल मे कोरमस रस निशि ति
वुछुन ह्योतमस तॉड़्य ड्यठिमस बरन
मे ति कल गनेयि ज़ोगमस तॅत्य् ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 74, पृ० 146

लल बोहॅ लूसुस छाँडान तु गारान
हाल म्यॅ कोरमस रसुॅ निशॅतिय
वुछुन ह्योतमस तॉग्र डींठिमस बरन
म्यॅति कल गनेयम ज़ि ज़ोगमस तॅतिय ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 32, पृ० 76

लल ब्व लाहॅसोस छ़्वह हरान तु गारान
हलु मे कोरमस रसुनि तय
व्वछुन ह्योतमस तॉड़्य डॉठमस बरन्यन
मे तु कल गनेयम ज़ोगमस तॅती ।।

– लेखिका

वाख की पहली पंक्ति में लूसस और छ़ारान शब्द दोनों विचारणीय हैं।

यह 'लूस्स' नहीं है यह 'लहॅ सोस' शब्द है। जिस का अर्थ है अग्नितप्त जैसे 'प्रेमसोस' (योग अग्ति तप्त)।

यह 'छ़ारान' शब्द नहीं है, यह 'छ्वह हरान' है। 'हरान' अर्थात् छोउ़ देना, छ्वह अर्थात् इधर उधर भटकना, दूर करना, मोज मस्ती।

'रसना' – संस्कृत शब्द है और अर्थ है 'जिह्वा' ।

'व्छुन' – अर्थात् दोहन, एक घूँट में पीने का प्रयास करना।

'डीठ' – का अर्थ है देखना लेक़िन

'डॉठमस' – का अर्थ है तोरण खोलना ।

'ताड़्य ड़ाठमस बरन्यन' का अर्थ है कि अमृत के घूँट निगलते मैं तालु के अवरोधक कपाट हटाये। तालु खुला छोड दिया।

वाख में वास्तव में 'ताड़्य डीठिमस' नहीं है। यह तो 'तॉड डॉठमस' है जिसका अर्थ है चिटकनी, 'तोरण' कपाट खोल देना।

इस वाख में रसनि शब्द के आसपास ही मूल अर्थ केन्द्रित है। यह वास्तव में योग सिद्धि की अवस्था में अमृतपान की ओर संकेत है। कोई भी द्रव्य पीने के हेतु जिह्वा की अपनी विशेष भूमिका होती है। मुँह लगाकर एक ही घूँट में निरन्तर पीने की क्रिया और तालु कपाट के अवरोधक को हटा कर दूर रखने की प्रक्रिया योगानन्द का आभास दिला रही है। यही सोमरस पान की अवस्था है।

वाख का सही पाठ इस प्रकार स्थिर होता है –

लल ब्व लाहॅसोस छ्वह हरान तु गारान
हलु मे कोरमस रसुनि तय
व्छुन ह्योतमस तॉड्य डॉठमस बरन्यन

मे तु कल गनेयम ज़ोगमस तॅती ।।

हिन्दी अनुवाद –

मैं लल अग्नि (योग अग्नि) से तप्त सांसारिक आकर्षण
त्यक्त ढूँढ रही हूँ उनको
मैंने जिह्वा से पान (अमृत पान, मधु आनन्द पान) का
संकल्प लिया
चोषणे लगा तालु अवरोधक हटाये, खुले कपाट
मन में इछा जागी वहीं टोह में रहीं मैं ।

शब्दार्थ :–

लॅहसोस – अग्नि तप्त (योग–अग्नि तप्त)
छ्वह–हरान – सांसारिक लगाव छोड़ कर मन का इधर–उधर भटकना
रसनि – (सं० रसना) जीभ
व्युछुन – चोशना (कश्मीरी दाम द्युत)
तॉड्य – तालु के दो कपाट
डॅठुमस – दूर हटाये (डोठुन – खोल देना)
हलु – संकल्प के साथ काम आरम्भ करना।

०००

{ 15 }

گوَرن وۄننم کُنۓ وَژُن
نیٚبر دۄپنم اَندر اَژُن
سُے گوو لَلِ مےٚ واکھ تہٕ وَژُن
تَوَے مےٚ ہیوٚتُم نَنگے نَژُن

ग्वरन वोननम् कुनुय वचुन
नेबरु दोपनम अन्दर अचुन
सुय गोव ललि मे वाख तु वचुन
तवय मे ह्योतुम नंगय नचुन ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 21, पृ0 84

ग्वरन वोनुनम कुनुय वखचुन
नेबरु दोपनम अन्दर अचुन
सुय गव ललि मे स्व वाख तु वखचुन
तवय ह्योतुम न–हंगय नचुन ।।

– लेखिका

वखचुन – एक ही शब्द अथवा पद को बार–बार दोहराना। कश्मीरी में हम इसे ही 'वखनुन' या 'वखनय करुन्य' कहते हैं। इसी 'वखचुन' शब्द से परवर्ती युग में 'वचुन' शब्द का विकास हुआ है। ध्यान दीजिए, वचुन में एक पंक्ति बार–बार प्रत्येक

छन्द के साथ दोहराई जाती है ।

वाख के अन्तिम पद में प्रयुक्त 'नंगय नचुन' (नंगा नाचना) पर विद्वानों ने पर्याप्त टीकाएँ लिखीं हैं। अपने–अपने विश्वास के आधार पर शब्दों से अभिधार्थ के साथ–साथ लाक्षणिक एवं व्यंजनार्थ ढूँढने का प्रयास किया ।

इतना ही नहीं 'नंगय नचुन' को लेकर लल्लेश्वरी के नग्न चित्र तैयार किये गए और लटकती तोंद 'लल' के सहारे जननेन्द्रिय को छिपाने का प्रयास किया गया । अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू और कश्मीरी में लेखकों ने कहीं–कहीं शिष्टाचार के नाते मुख्य अर्थ की उपेक्षा करके भावार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

ललवाख के गायकों और लोक संगीतकारों ने दो क़दम आगे बढ़ कर इस बात को भोले भाले जन–मानस तक पहुँचाया । जन–मानस में शंका उत्पन्न हुई कि लल्लेश्वरी को जब गुरु ने गुरु दीक्षा देकर बाहर से भीतर प्रवेश करने की सलाह दी थी तो उसे निर्‌वस्त्र होकर घूमने फिरने की क्या आवश्यकता पड़ी ? क्या योगिनी को लोक–लाज का कोई ख़्याल नहीं था ? क्या माँ अपने बच्चों के सामने निर्लज्ज होने की यातना सह सकती है। यदि लल्लेश्वरी को लोकलज्जा का ध्यान नहीं होता तो वह यह वाख न कहती –

लज़ कासी शीत निवारी
तृनॅ ज़लॅ करी आहार ।
यि कॅम व्पदीश कोरुय बटा
अचे़तन वटस सचे़तन द्युन आहार ।"

इसका यही तात्पर्य है कि लल्लेश्वरी ने अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया । हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि लल्लेश्वरी

एक योगिनी है, पगली नहीं। वह शिव की प्रिया है जिसने घूँट-घूँट ज्ञानामृत का पान करके शिवमय होने का संकल्प बार-बार दोहराया है।

इस वाख के मूल पाठ पर विचार करने से पूर्व उत्सुक पाठक और श्रोतःगण का ध्यान स्वामी परमानन्द के एक भक्ति गीत "कष्ट कास्तम म्यॅ भगवान हरे " की पंक्तियों की ओर आकृष्ट करना आवश्यक होगा ।

परमानन्द की यह कविता 'मरकनटाइल-प्रेस' श्रीनगर द्वारा प्रकाशित 'ज्ञान प्रकाश' के 207-208 पृष्ठ पर दी गई है।

काव्य पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

हंगु आख द्रोपदी नंग रॅछथस
नंगु वुछुनुच तस सामरथ कस
रंगु रंगु आवरण नॉल तस हुरे
सन्तोॅष्ट रोज़तम गरि गरे ।। (पृ0 208)

इन पंक्तियों में प्रथम शब्द 'हंग ' विचारणीरय है। 'हंग युन ' का अर्थ है - मदद के लिये आना, किसी का पक्ष लेना, साथ देना। इस का विपरीत सूचक शब्द है - ' न हंग' अर्थात् बिना किसी सहायता के; बिना किसी का पक्ष लिये; किसी सहारे के बिना ।

कश्मीरी पण्डितों के विवाह सम्बन्धी लोकगीतों में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। विवाह के अवसर पर हर शुभ कार्य निश्चित मुहूर्त पर शुभ शुगुन के साथ किया जाता है।

स्त्रियाँ इस मुहूर्त और शुगुन पर हर्षनाद के साथ 'वनवुन' गीत इस प्रकार गाती है -

हंगु हय नोव न्यछतर् त ज़ंग हय आयि रुच़्ये

लल्लेश्वरी के इस वाख में -नंगै नचुन' के स्थान पर - न हंगय

नचुन का प्रयोग करें तो वाख का सही पाठ इस प्रकार होगा –

ग्वरन वॊनुनम कुनुय वखचुन
नॆबरु दॊपनम अन्दर अचुन
सुय गव ललि मे स्व वाख तु वखचुन
तवय ह्यॊतुम न–हंगय नचुन ।।

गुरुपदेश पाकर लल जब बाहर से भीतर प्रविष्ट हुई जब उसके हृदय के प्रकोष्ठ ज्ञान की अद्भुत द्युति से चमक उठे, जब वह ब्रह्मलीन हो जाती है तो उस अवस्था में किसी साथी या पक्षधर के बिना ही आनन्द विभोर हो जाती है। भीतर प्रवेश पाने के उपरान्त मुझे किसी उपासना सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ी जैसे – माला, दीप, पुष्प, धूप, भोग इत्यादि ।

अब इस वाख का हिन्दी भाषानुवाद इस प्रकार से होगा –

गुरु ने केवल कही एक बात
बाहर से कर भीतर प्रेवश
लला के लिये वही था सदुपदेश
बिना पक्षधर के हुई नृत्यमग्न
(भीतर) लगी घूमने बिना सहायक के ।

शब्दार्थ :–

वखचुन –एक ही शब्द अथवा पद को बार–बार दोहराना।
स्व वाख – वह कथन जो सही वक्त या सुसमय पर कहा जाये
न–हंगय– बिना किसी सहायक के, बिना किसी पक्षधर के

ooo

{ 16 }

ووتھ رینیٔ ارژُن سکھر
اَتھِ اَل پَل وَکھُر ہیتھ
یوٚد وَنے زانکھ پَرَم پد اکھیر
ہےٚ شِکھر کھےٚ شِکھر ہیتھ

व्थ रण्या अरचुन सखर
अथि अल पल वखुर ह्यथ
योद वनय ज़ानख परम पद अख्यर
हे शिखर खे शिखर ह्यथ ।।

—'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 61, पृ० 130

उत्थ् रैन्या । अर्ज़ुने सखर्
अथि अल् ।। पल् ।।.ता अखुर् ।। हित्।।
यदि् ज़ानक् परमो पद् ।। अक्षुर
खशे खर् हूशे खुश्र् कित्।।

—'ललवाक्याणि' – ग्रियर्सन (स्टेन –बी) – वाख 16, पृ० 32

व्थ रैन्या अर्चुन सखर
अथे अल–पल वखुर ह्यथ
योद वनय ज़ानख परमुपद अक्षर
हिशी खोश ख्वर क्यथु ख्यथ
(क्षिशेखर हिशेक्षर ह्यथ)

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 13, पृ० 26

व्वथ् रॅन्य् अर्चुन सखर
अथे–अलु पल व्वखुर ह्यथ
योद वनय ज़ानख परमुपद अख्यर
यि–ख्यर–अख्यर हुय शेखर ह्यथ ।।

– लेखिका

वाख के प्रथम पद में 'रण्या' शब्द के बदले 'रॅन्य्' शब्द होना चाहिए। ' रॅन्य ' अर्थात् हे रानी ! हे सुन्दरी ! हे देवी ! आदि । 'रण्या' न संस्कृत में कोई शब्द है अथवा न किसी शब्द का अपभ्रंश रूप है। 'रण' अथवा 'रणेश' (शिव) से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस पद के अन्तिम शब्द के रूप में सखर (तैयारी करना) तथा शेखर (शिरो भूषण) { शशि शेखर – जिसका शिरोभूषण चन्द्रमा है अर्थात् शिव } । दोनों शब्द प्रयोग सार्थक एवं अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ हैं।

हे रानी ! उठ, पूजा अर्चना की तैयारी कर। अपने गृहस्थ कर्तव्य का निर्वाह करते हुए यह जान कि गृहस्थ आश्रम को चलाना और गृहस्थी की दिनचर्या ही शिव की पूजा है और उस नाश रहित शिव का परमपद है। इस नाशवान जगत और जीव का रूप नाश रहित शिव ही धारण किये हुए है ।

अन्तिम पद का पाठ पर्याप्त विकृत हो चुका है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित शब्दों की जानकारी सहायक सिद्ध हो सकती है ।

क्षर (संस्कृत) – जिसका नाश होता है, नाशवान, जगत, अज्ञान, जीव

अक्षर (संस्कृत) – अविनाशी, अपिरिवर्तनशील, नित्य, आत्मा

·शैवशास्त्र /योग शास्त्र के आधार पर –

समस्त संसार शिव–शक्ति मय है। सृष्टि के कण–कण में शिव व्याप्त है और शक्ति ही उसकी स्पन्दन शक्ति है।

अतः अन्तिम पद का पाठ शुद्ध रूप होगा –

यि क्षर – अक्षर हुय शेखर ह्यथ

जीव–जगत स्वरूप अथवा नित्य रूप में सर्वत्र शेखर अनित्य ही विद्यमान है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय हो जाता है–

व्वथ् रॅन्य् अर्चुन सखर
अथे अलु–पल व्वखुर ह्यथ
योद वनय ज़ानख परमुपद अख्यर
यि–ख्यर–अख्यर हुय शेखर ह्यथ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

हे नारी ! उठो शेखर को पूजो (अथवा पूजा की तैयरी कर)
अपना सब कुछ साथ लेकर (निछावर करते हुए)
यदि कहूँ तो जान लोगे नित्य–स्वरूप परमपद
यह सब क्षर–अक्षर लिये जो शेखर ही है।

शब्दार्थ :–

रॅन्य – रानी, नारी
अरचुन – पूजना
अलुपलु व्वखुर – गृहस्थी का समस्त सामग्री

परमपद – उच्च पद, मोक्ष, वैकुंठ

अख्यर – नित्य, अविनाशी, सनातन, अनादि आत्मा

ख्यर – नाशवान, देह, अज्ञान, जगत

शेखर – शिरोभूषण, शिव, शशि शेखर, चन्द्रमा है शिरोभूषण जिसका अर्थात् शिव ।

ooo

आज्ञाचक्र
(अर्थात्)
द्विदलपद्म
MEDULLA
१ सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रम्हनाड़ी
अनाटमी के अनुसार
अर्धचंद्र
अर्धांगशिव
हाकिनी
ॐ कार प्रणव
हं
क्षं
गांधारी
हस्तिजिव्हा
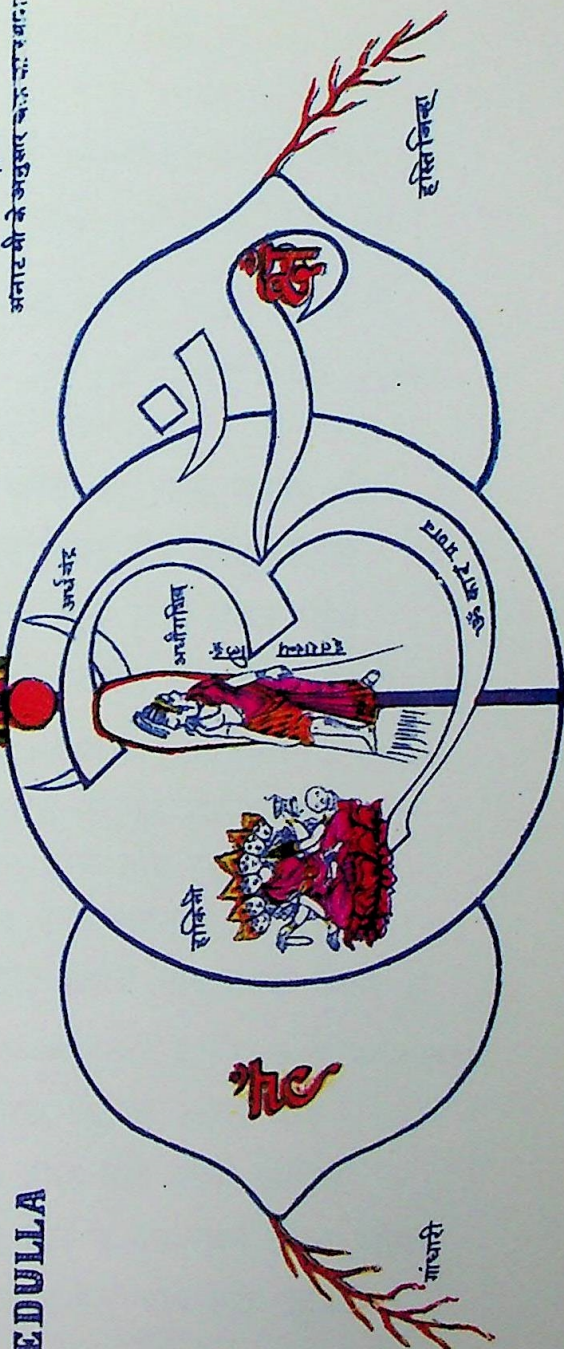
{17}

نابدی بارس اَٹہ گنڈ ڈیول گوم
دیہہ کاڈ ہول گوم ہیکہ کہیو
گور سند وَتن راوَن تیول پیوم
پہلِ روس کھیول گوم ہیکہ کہیو

नाबुद्य बारस अट्ट गण्ड ड्यॊल गोम
देह काड हॊ`ल गोम ह्यकु कॅह्यो
ग्वरु सुन्द वनुन रावन–त्यॊल प्योम
पाहलि–रोस ख्योल गोम ह्यकु कह्यो ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 23, पृ0 86

नाबुद्य बारस अटुगंड ड्योल गोम
दिहु–कान ह्योल गोम ह्यकु क्यहो
ग्वरु सुन्द वनुन रावन–त्योल प्योम
पहलि रोस्त ख्योल गोम ह्यकु क्यहो ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 24, पृ0 54

नाबुद्य बॉरस अटुगंड ड्यॊल गोम
देह–काड होल गोम ह्यकु कॅहियो
ग्वरु सुन्द वॊन न युन रावन त्यॊल प्योम
पहलि रोस ख्यॊल गोम हकि कुहियो ।

– लेखिका

इस वाख की तृतीय पंक्ति 'ग्वर सुन्द वॅनुन रावन त्योल प्योम' पर तनिक ध्यान दीजिये। लगता है इस का पाठ शुद्ध नहीं है ।

यह 'वनुन' शब्द नहीं है यह – 'वोन न युन ' शब्द खण्ड है। गुरुपदेश तो अमृत वाणी सदृश होता है। गुरुपदेश से विह्वलित नहीं होते हैं आनन्दित होते हैं। गुरुपदेश तो ज्ञान प्रकाश है जिसे मिल गया उसका इह–लोक औरा परलोक सुधर जाता है और जिसे नही मिला वह संकटग्रस्त हो जाता है।

केवल एक शब्द के मूल पाठ को न समझने के कारण यह वाख विकृत हो चुका है। चतुर्थ पंक्ति में 'ह्यकु' शब्द के बदले 'हकि' शब्द का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि बिना गडरिये के रेवड़ को आगे ले जाने की बात सामने आती है। 'हकि कोहियो' से अभिप्राय हे कौन हाँक लेगा।

मेरे विचार से इस वाख का शुद्ध और सही पाठ इस प्रकार हो सकता है :–

नाबद्य बॉरस अटगंड ड्योल गोम
देह–काड होल गोम ह्यकु कॅहियो
ग्वरु सुन्द वोन न युन रावन त्योल प्योम
पहलि रोस ख्योल गोम हकि कुहियो ।

हिन्दी अनुवाद :–

मधु मिश्रित बन्धन की गाँठें ढीली पड गईं
देह मुद्रा में पड़ गया ख़म सह लू कैसे
श्री गुरु को पहचान न पाइ खोने की पीड़ा से हुई विह्वलित
हुआ गड़रिये–बिन रेवड़ हाँके कौन ?

शब्दार्थ :–

नाबद्य बॉर – मधु मिश्रित बोझा, बोझा, प्रेम–रस भौतिक रूप

में, सांसारिक सुख भोग, आध्यात्मिक रूप में प्रिय मिलन के क्षण ।

अटु गंड – कन्धों पर रसी से बन्धे बोझ की गाँठ, अटु अर्थात् कन्धे

देह काड – शरीर मुद्रा

पोहल – गड़रिया

कॅहियो – किस प्रकार से

हकि – हाँकना

कुहियो – कौन

ख्योल – रेवड़ (कश्मीरी जब्)

'नाबद्य बार ' शब्द का प्रयोग लल्लेश्वरी ने आध्यात्मिक आनन्द एवं उपलब्धि के सन्दर्भ में ही किया है। जब उसकी पकड़ ढीली पड़ जाती है तो ज़िन्दगी के वसन्त में अकस्मात् पतझड़ की मुर्दनी आ जाती है।

'पोहल ' गडरिया है और यहाँ मालिक के सन्दर्भ में व्यवहृत हुआ है। 'ख्योल ' रेवड़ को कहते हैं। यहाँ प्रयोग सृष्टि पर जी रहे प्राणी की मनःस्थिति इन्द्रियों के सन्दर्भ में हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लल्लेश्वरी के इस वाख में शब्दों का प्रतीकात्मक रूप में व्यहवहार हुआ है। एक ही शब्द लौकिक सन्दर्भ में एक अर्थ का बोध कराता है और अलौकिक अर्थ में दूसरे सन्दर्भ के साथ जुड़ जाता है।

लल्लेश्वरी का शब्द ज्ञान विशद् था। वह क़श्मीरी भाषा के शब्दों की अन्तरात्मा से परिचित थी यही कारण है कि वह पूर्ण अधिकार के साथ अर्थ गर्भित शब्दों के व्यवहार से वाख के भाषा–सौन्दर्य को द्विगुणित कर देती है ।

०००

नहीं है।

मेरे विचार से प्रस्तुत वाख का पाठ शुद्ध रूप इस तरह से नियत हो जाता है –

छ़ाँडान लॅह अछुस पॉन्यु पानस
छॆपिथ ज्ञानस वोतुम ना क्यूँच़
लय कॉरमस तु वॉचुस ऑल्यु थानस
बारि बोर बानु तु चववुन नु कूँह ।

हिन्दी अनुवाद –

इस तप्त कृशकाय में ढूँढते ढूँढते मुरझा गई
गुप्त ज्ञान तक तनिक नहीं पहुँच सकी
हुई मुदित तो परमस्थान पर पहुँची
खुद ही उठाये अमृत कलश पर पीवत न कोई ।

शब्दार्थ :–

क्यूँच् – अल्प मात्र भी, कुछ भी नहीं
ऑल्य् थानस – तत्त्व ज्ञान, ऊपर का स्थान, ब्रह्मस्थान, मूल शब्द – कश्म0 ओल
थान – स्थान, रहने की जगत, ब्रह्म आदि का स्थान
बारि–बोर – कन्धों पर बोझा
कुँह – कोई एक
लहॅ अॅछुस – तप्त कृषकाय, लॅह – तप्त अग्नि
ओछ़ – कमज़ोर ।
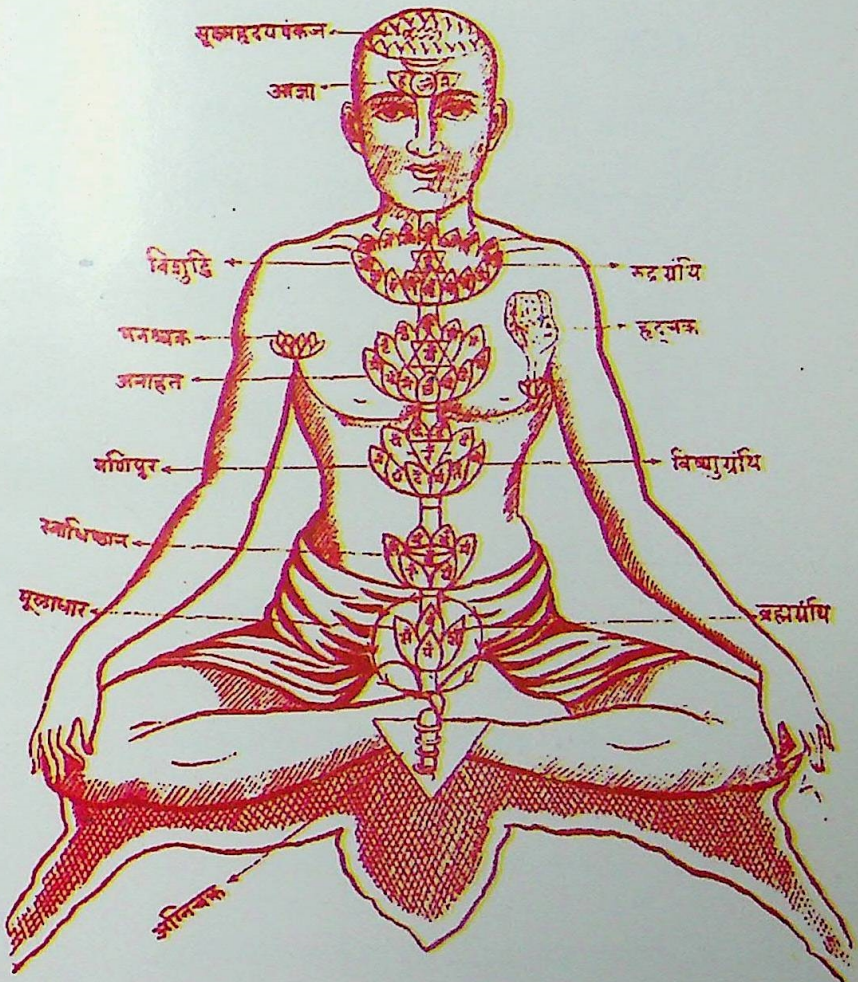
ooo

सूक्ष्महृदयपंकज
आज्ञा
विशुद्धि
रुद्रग्रंथि
हृच्चक्र
मनश्चक्र
अनाहत
मणिपूर
विष्णुग्रंथि
स्वाधिष्ठान
मूलाधार
ब्रह्मग्रंथि
अग्निचक्र

षट्चक्र

{19}

سہزس شم تہ دم نو گژھے
ییژھ نو پراوکھ مکتی دوار
سللس لون زن میلتھ تہ گژھے
توتہ چھے دورلب سہز وچار

सॅहज़स् शम तु दम नो गछ़े
येछ़ि नो प्रावख मुक्ती द्वार
सलिलस लवण ज़न मीलिथ ति गछ़े
तोति छुई द्वरलभ सॅहज़ु व्यच़ार ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 76, पृ0 150

सहज़स शम तॅ दम नो गछ़े
यछ़ि नो प्रावख मुक्ती द्वार
सलिलस लवण ज़नमीलिथ गछ़े
तोति छुय दुर्लभ सहज़ु व्यच़ार ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 36, पृ0

sahazas shĕm ta dam nō gaċhi
yiċhi nō prāwakh mŏkti-dwār
salilas lawan-zan mīlith gaċhi
tō-ti chuy durlab sahaza-vĕċār

ललवाक्याणि – गियर्सन – वाख 29, पृ0 50

सॅहज़स शम तु दम नो गछ़े
यछ़ॅनु प्रावख मुक्ती द्वार
सलिलस लवण जऩ मीलिथ गछ़े
तॊव नो छु द्वर्लभ सॅहज़ु व्यच़ार ।।

– लेखिका

वाख की दूसरी पंक्ति में 'यछ़िनो' का प्रयोग विचारणीय है। यह वास्तव में 'यछ़ॅनु' अर्थात् चाहने से मुक्ति का द्वार मिल जायेगा । जब इच्छा संकल्प का रूप धारण करेगी तो मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है।

चतुर्थ पंक्ति का पाठ देखिये –

' तोति छुई दोर्लभ सहज़ व्यच़ार '

इस पंक्ति का अर्थ वाख की पहली, दूसरी और तीसरी पंक्ति से असम्बद्ध होने के कारण बेमानी है। जब साधक का संकल्प दृढ़ होगा, जब पानी में नमक के समान जीव अध्यात्म में लय हो जायेगा तब 'सहज विचार' दुर्लभ नहीं अपितु सुलभ बन जाता है। संकल्प की दृढ़ता तथा लय होने की अवस्था साधक को परमानन्द के दिव्य स्वरूप में एकमेक कर देती है। दुर्लभता का प्रश्न ही नहीं आता। अतः चतुर्थ पंक्ति का शुद्ध पाठ इस प्रकार से होगा :–

'तॊव नो छु द्वर्लभ सहज व्यच़ार '

सम्पूर्ण वाख के शुद्ध पाठ का स्वरूप इस प्रकार नियत होता है –

सॅहज़स शम तु दम नो गछ़े
यछ़ॅनु प्रावख मुक्ती द्वार
सलिलस लवण ज़न मीलिथ गछ़े
तॊव नो छु द्वर्लम सॅहज़ व्यच़ार ।।

हिन्दी अनुवाद :–

सहज क्रिया (सहज योग) के हेतु शम और दम की
आवश्यकता नहीं
जब संकल्प दृढ़ होगा तो पाओगे मुक्ति द्वार
मानो जल के साथ लवण मिल जायेगा
तो फिर 'सहज़ विचार' दुर्लभ नहीं ।

शब्दार्थ :–

सॅहज़ क्रिया /सॅहज़ योग – सहज रूप में आत्मबोध
intuitive knowledge, सहज ज्ञान, सहज बोध

सॅहज़ – स्वतः उद्‌भुत सत्य, ज्ञान स्रोत का प्रस्फुटन – सहज
रूप में दिव्य ज्ञान की प्राप्ति, इर्फ़ान ।

शम – सभी सांसारिक कार्यों से निवृत्ति, बहिरिन्द्रियों
का संयम, अन्तःकरण और मन का संयम

दम – श्वास प्रश्वास क्रिया का नियन्त्रण

सलिल – सं0 जल

लवण – सं0 नमक

सॅहज़ु व्यच़ार – अनुष्ठानों और गुह्य साधनाओं से रहित
विचार; परम्‌सत्य को जानने की दृढ़ इच्छा
और निश्चय; सहज पथ ।

टिप्पणी :– सिद्धों, नाथों और सन्तों ने सहज शब्द का प्रयोग किया है। सहज का शाब्दिक अर्थ है स्वाभाविक । सहज जीवन पद्धति पर बल देकर निर्गुण भक्त कवियों ने इस शब्द को ग्रहण किया है। बौद्धों के विचारानुसार सहज वह परम तत्त्व है जो प्रज्ञा और उपाय के सहगमन से उत्पन्न होता

है। (हिन्दी साहित्य कोश – भाग–1, पृ० 898)

नाथ पंथी साहित्य में भी सहज को परम तत्त्व के रूप में ग्रहण किया गया है।

आडम्बर रहित, सरल, भावपूर्ण जीवन निर्वाह के अर्थ में लल्लेश्वरी ने प्रस्तुत वाख में 'सहज' शब्द का व्यवहार किया है।

इसी व्याख्या अथ स्पष्टीकरण (explanation) के सन्दर्भ में प्रस्तुत वाख के अर्थ को जानने का प्रयास होना चाहिए ।

ooo

{ 20 }

مۆڑو کرنیے چھے نہ دھارُن تہ پارُن

مۆڑو کرنیے چھے نہ رچھِنۍ کاے

مۆڑو کرنیے چھے نہ دیہہ سندارُن

سہز ویچارُن چھے ووپدیش

मूढ़ो क्रय छय नु धारुन त पारुन
मूढ़ो क्रय छय नु रछिन्य् काय ।
मूढ़ो क्रय छय नु दीह संदारुन
सॅहज़ व्यचारुन छुय व्योपदीश ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 59, पृ0 126

मूडो क्रय छय नु दॉरुन तु पॉरुन
मूडो क्रय छय नु रछिन्यु काय।
मूड़ो क्रय छय देह–सॅन्ज़ु रावुन
सॅहज़ व्यचारुन छुय व्पदीश ।।

– लेखिका

वाख के प्रथम पद पर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

यह 'धारुन' तॅ पारुन' नहीं है। 'पारुन' निरर्थक शब्द है। यह वास्तव में 'दॉरुन' तथा 'पॉरुन' शब्द है।

'दॉर' अर्थात् डटे रहना। 'दॉर करुन' अर्थात् डट कर हार न मानना, बाहरी हठ का प्रदर्शन करना।

इस शब्द का प्रयोग यहाँ बाह्य हठयोग साधना के हेतु सार्थक रूप में किया गया है।

'पॉरुन' अर्थात् सजावट, शृंगार करना, सजाना।

हठयोग साधना का प्रयोग आध्यात्मिकक सन्दर्भ में और साज–शृंगार का प्रयोग भौतिक जीवन के सन्दर्भ में किया गया है।

इसी प्रकार वाख की तृतीय पंक्ति में 'सन्दारुन' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शब्द प्रयोग से पद का अर्थ ही विकृत हो जाता है। 'सन्दारुन' का शाब्दिक अर्थ है – सँभल जाना, किसी बड़ी हानि से ग्रस्त होकर पुनः धीरे–धीरे अपनी स्थिति में सुधार करना अथवा स्वस्थ होना।

यहाँ वास्तव में शुद्ध प्रयोग – 'देह–सँज़ु रावुन' है, सन्दारुन नहीं। 'देह–सॅन्ज़' का प्रयोग 'देह की चिन्ता' मात्र अपने शरीर का ध्यान, स्व–पोशन अथव स्व शृंगार के सन्दर्भ में किया गया ।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है–

मूडो क्रय़ छय नु दॉरुन तु पॉरुन
मूडो क्रय छय नु रछिन्यु काय।
मूड़ो क्रय छय दॆह–सॅन्ज़ु रावुन
सॅहज़ु व्यचा़रुन छुय व्यपदीश ।।

हिन्दी अनुवाद :–

मृढ़ मति ! क्रिया हठ धर्मिता नहीं
और नप स्व–शृंगार (भौतिक प्रेम)
मूढ़ मति ! क्रिया शरीर पोशन नहीं है ।
मूढ़ मति ! क्रिया देह चिन्तन (स्व पोशन)
देह शृंगार से मुक्त हो जाना है ।
'सहज विचार' को अपनाना ही उपदेश है।

शब्दार्थ :–

दॉरुन – मूल शब्द – दॉर (दॉर करुन) अर्थत् डटे रहना, हार न मानना।

पॉरुन – स्व–श्रृंगार, सजाना

काय – शरीर, भौतिक वजहूद

देह – शरीर

देह–सँज़ु – शरीर चिन्तन, स्वत्र–पोशन, अथवा स्व–श्रृंगार

रावुन – छूट जाना, घुम हो जाना, अलग हो जाना

सॅहज़ु व्यचार – इस शब्द खण्ड की विस्तृत व्याख्या वाख 76 के अन्तर्गत की गई है।

टिप्पणी –

बाहरी हठयोग साधना में साधक अपनी सहज शक्ति और अपने ज़िद को दॉव पर लगा देता है। इन्द्रिय–निग्रह की साधना बहुत कष्ट प्रद एवं दुष्कर होती है। हठ पूर्वक साधना ही हठयोग है और दॉरुन शब्द का प्रयोग इसी सन्दर्भ में हुआ है।

जो अध्यात्म के चक्कर में न पड़ कर भौतिक जीवन के सुख भोग में लय हो जाता है उसके लिये 'पॉरुन' शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थात् वह मनुष्य जो भौतिक साज सज्जा में ही व्यस्त और मस्त रह कर सुखद जीवन का अनुभव करता है।

शब्दों की अन्तर्रात्मा से अनभिज्ञ तथा साधनात्मक जीवन की बारीकियों से अपरिचित होने के कारण प्रस्तुत वाख खण्डित रूप में हमारे ज़ेहन को कुरेदता हुआ खण्डहरों के अम्बार के नीचे छिपे मूल को पहचानने के लिए प्रेरित करता है।

ooo

آیَس وَتے گَیَس نٕ وَتے
سُمَن سوتھ منز لُوسُم دوہ
چنٛدس وُچھُم تہٕ ہارٕ نٕ اتھے
ناو تارَس دِمہٕ کیا بو

आयस वते गॅयस नु वते
सुमन स्वथि मंज़ लूसुम दोह ।
चन्दस वुछुम तु हार नु अथे
नाव तारस दिमु क्या बो ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 5, पृ0 66

आयस वते गॅयस ना वते
सुमन स्वथे मंज़ लूसुम दोह
चंदस वुछुम तु हार नु अते
नाव तारस दिमु क्याह बोह ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 16, पृ0 35

आयस वते, गॅयस नय वते
सुम नु स्वथे, मंज़ लोसि द्वह
चन्दस वुछिथ हार नु अते
नावु तारस दिम क्या बो।।

– लेखिका

'आयस वते' अर्थात् मैं मार्ग से आई। लगता है मार्ग का वैशिष्टय कहीं छूट गया है। पथ कुपथ भी हो सकता है और सुपथ भी। वाख की द्वितीय पंक्ति में 'सुमन' शब्द का पाठ विकृत है। 'सुमन सोथ' का कोई अर्थ नहीं है। यह वास्तव में 'सुम न सोथे' अर्थात् संसार सागर में ' न पुल है न सेतु' । 'सुम' शब्द संस्कृत 'सीमन' शब्द का परिवर्तित रूप है। । नदी के इस पार से उस पार जाने के लिए डाला गया एक ही (खम्भा) स्तम्ब जिसे कश्मीरी में 'कानुल' कहते हैं।

'सोम सोथ' – अर्थात् धार्मिक अथवा सामाजिगक सिद्धान्तों की पाबन्दी अथवा नये और पुराने के मध्य सम्बन्ध का पर्याय है। लेकिन 'सुमन सोथ' कोई शब्द ही नहीं है।

'हार' शब्द के कश्मीरी भाषा में कई अर्थ हैं –

'हार' – आषाढ, शिकस्त, टुकड़ा, कौड़ी, माला, प्रत्यय आदि। यहाँ 'कौड़ी' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

'हर' शब्द के भी कई अर्थ हैं जैसे शिव, मलाई, चारों ओर, हरदम, लड़ाई आदि ।

प्रस्तुत वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार से होगा –

आयस वते, गॅयस नय वते
सुम नु स्वथे, मंज़ लोसि द्वह
चन्दस वुछिथ हार नु अते
नावुं तारस दिम क्या बो।।

हिन्दी अनुवाद –

पथ से आयी थीं नहीं लौटूँ यदि पथ से
ना सेतु ना बन्द, मंझधार में दिन ढल जायेगा
जेब टटोला मिली न कौड़ी जेब में

नाविका तारण हेतु दूँ क्या मैं।

शब्दार्थ :–

सुम – नदी पार जाने हेतु पुल
सोथ – बंद (फा० बांध)
हार – कौड़ी, एक पैसा, प्रभु रूपी धन
नावु तारस – नाविका तारण, पार उतरने हेतु ।
नाम रूपी तारण

ooo

زانہٕ ہا ناڑِ دَل مَن رٹِتھ
ژٕٹِتھ وٕٹِتھ کٕٹِتھ کلیش
زانہٕ ہا اَد اَستہٕ رسایَن گٹِتھ
شِو چھےٚ کرُوٹھ تہٕ ژین وۄپدیش

ज़ानु हा नाड़ि दल मनु रॅटिथ
चॅ़टिथ वॅटिथ कुटिथ क्लीश ।
ज़ानुहा अदु अस्तॅ रसायन गटिथ
शिव छुय क्रूठ तु चे़न व्वपदीश ।।

—'ललद्यद' — प्रो0 जयलाल कौल —वाख 80, पृ0 154

ज़ानहा नाडिदल र'टिथ
चॅ़टिथ व'टिथ कुटिथ कलीश
ज़ानहा अद असत रसायन गटिथ
शिव छुय क्रठ तु चे़न व्वपुदीश ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 29, पृ0 69

ज़ानिहा नाडीदल मन्।। रट्टीत्
चट्टीतु ।। वट्टीत् ।। कुटीत् ।। क्लेश्
जानिहा अस्तरसायुन् ।। घट्टीत् ।।
शिव छ्योयी कष्टो त चिन् ।। उपदेश ।

—ललवाक्यणि' — ग्रियर्सन, स्टेन बी,—वाख 34; पृ0 95

ज़ान यी हा नाडिदल मनु रॅटिथ
चॅटिथ, वॅटिथ, कुटिथ क्लीश
ज़ान यी हा अदु अस्त रसायन गॅटिथ
शिव छुय किव इष्टो तु चेन व्वपदीश।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख की प्रथम पंक्ति विचारणीय है :–

' ज़ान हा नाडिदल मनु रटिथ '

नाड़ी दल को मन से नियन्त्रित करना यदि मैं जानती ।

यह पहचानने की बात नहीं है और न इसका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से है।

लल्लेश्वरी वस्तुतः 'ज़ान' (पहचान, बोध, ज्ञान) शब्द के मूल अर्थ तत्त्व पर प्रकाश डालती है कि 'ज़ान' कैसे होती है।

पद का शुद्ध पाठ इस प्रकार से है :–

' ज़ान हा नाड़िदल मनु रटिथ '

नाड़ी दल को मन से नियंत्रित करके ही पहचान प्राप्त होती है। शरीर में तीन प्रकार की शिरायें पाई जाती हैं। ज्ञान वाहिनी, शक्ति वाहिनी और श्वास–प्रश्वास वाहिनी शिरायें। लल्लेश्वरी यहाँ इन्हीं शिराओं की ओर संकेत करती है।

इसी प्रकार तृतीय पद –

' ज़ानु हा अदु अस्तु रसायन गटिथ '

लल्लेश्वरी 'ज़ान' शब्द का बोध कराती है। यह 'ज़ान हा' शब्द नहीं है अपितु 'ज़ान यी हा' शब्द है अर्थात् जानकारी/बोध/पहचान/ज्ञान कैसे प्राप्त होगा ।

तृतीय पद का सही पाठ इस प्रकार होगा –

' ज़ान यी हा अदु अस्तु रसायन गटिथ '

अर्थात् जानकारी/ बोध का अभिप्राय है अपनी ही रसना से गट–गट अमृत पान।

पदार्थों में तत्त्वों का विवेचन करने वाला शास्त्र तो रसायन शास्त्र कहलाता है। पदार्थों का तत्त्वगत ज्ञान ही रसायन है। दूसरे शब्दों में नाड़ी–नियन्त्रण एवं आत्मबोध से उपलब्ध तत्त्व ज्ञान रूपी अमृत ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होगा–

ज़ान यी हा नाडिदल मनु रॅटिथ
चॅ़टिथ, वॅटिथ, कुटिथ क्लीश
ज़ान यी हा अदु अस्त रसायन गॅटिथ
शिव छुय किव इष्टो तु चे़न व्पदीश।।

हिन्दी अनुवाद –

पहचान हो जायेगी नाड़ीदल को नियंत्रित करके
काट (दुई का पर्दा) समेट (दस इन्द्रियाँ) महीन कर ले
आत्म क्लेश
पहचान तब होगी अपनी रसना से निरत घट–घट
अमृत पान कर
शिव कैसे इष्ट है, उपदेश की तह में जाओ ।

शब्दार्थ :–

ज़ान – बोध / ज्ञान/ जानकारी / पहचान
नाड़ीदल – नाड़ी समूह
चटिथ – काट कर (दुई का पर्दा)
वटिथ – समेट कर (दस इन्द्रियाँ और मन)

कुटिथ – महीन बनाकर

रसायण – पदार्थों का तत्त्वज्ञान? अमृत

गटिथ – गट–गट पी कर

अस्तु – धीरे–धीरे

किव – ' गोड वॉरिव्य किवये
द्वदतु नाबद हिवये "
लोकगीत की पंक्ति के आधार पर 'किवये' शब्द का अर्थ बोध हो जाता है ।

किव इष्टो – किस प्रकार के इष्ट

ooo

{ 23 }

آیس کمہِ دِشہِ تہٕ کمہِ وَتے
گژھ کمہِ دِشہِ کوٚ زانہٕ وَتھ
اَنتہِ داے لگَمے تَتے
چھینِس پھوکس کانژھ تہٕ نوسَتھ

आयस् कमि दीशि तु कमि वते
गछ़ॅ कमि दिशि कवु ज़ॉन वथ् ।
अन्ति दाय लगिमय तते
छॆनिस फ्वकस काँछ ति नो सथ्।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 8, पृ0 70

आयस कमि दीशु तॅ कमि वते
गछु कमि द्यशि कवु ज़ानु वथ
अन्तिदाय लगिमय तते
छॅनिस फोकस काँह ति नो सथ ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 19, पृ0 40

योजि कवि दिशी कव ज़ाना
गछीजि कव दिशी कम् सत् ।।
अश्टदल् कमल ।। वसवाना
छ्यनीस फुक्कस कांछ्य ना सत् ।

–'ललवाक्याणि' – ग्रियर्सन स्टीन–बी0 – ' वाख 46, पृ0 61,

आयस ज़ि कमि दिशि कॉवु ज़ानोनुय
गछ़ु ज़ि कवु दिशि कमि सातु
अष्टदल कमल छु वासुवोनुय
छ़ॅनिस फ्वकस कांछ नो सत्थ

– लेखिका

द्वितीय पद में 'कव्' शब्द पर ध्यान दीजिये । 'कव्' अर्थात् कैसे, किस प्रकार, किस युक्ति से । यह शब्द 'कव्' नहीं है अपितु 'कॉव' शब्द है जिस का अर्थ है – ध्यान मग्न रहना, होशियार रहना, चेत रहना। कश्मीरी भाष में एक प्रयोग है – 'कवस रोज़ुन' अर्थात् टोह में रहना, होशियार रहना। इस 'कवस' शब्द का एक परिवर्तित रूप है – कॉव ।

तृतीय पद तो पूर्ण रूप से प्रक्षिप्त है। स्टीन महोदय ने इस पद के शुद्ध पाठ को देने का प्रयास किया है। यह –'अन्तदाय लगिमय तते' नहीं है, अपितु शुद्ध पाठ है – 'अष्टदल कमल छु वास वोनुय' अर्थात् अष्ट–दल कमल पर है वास उनका। अष्टदल कमल का सम्बन्ध कुंडलिनी योग के साथ है । मणिपुर और स्वाधिष्ठान चक्रके मध्य पीछे की ओर स्थित अष्टदल कमल की स्थिति मानी जाती है।

चतुर्थ पद में 'कॉंछ' शब्द का प्रयोग भी सन्देहास्पद है । 'कॉंछ़' एक पारिभाषिक शब्द है जिसको लकड़ी की एक छोटी लठ के रूप में व्यवहार में लाया जाता है। पकी हुइ शाली के कणों को पौदों से अलग करने के हेतु इसका प्रयोग खलिहानों में किसान करते हैं।

इस पद में 'कॉंछ़' शब्द के बदले 'कांछ' अर्थात् चाहना, इच्छा करना आदि होना चाहिए । इसी से कश्मीरी शब्द 'कांछुन' बना है जिसका

अर्थ है – चाहना, मांगना, अभिलाषा व्यक्त करना।

'कांछ' – संस्कृत – कांक्षा (इच्छा), चाह प्रवृत्ति, झुकाव।

वाख का शुद्ध पाठ इस प्रकार से निश्चित होता है –

आयस ज़ि कमि दिशि कॉवु ज़ानोनुय
गछु ज़ि कवु दिशि कमु सातु
अष्टदल कमल छु वासवोनुय
छॅनिस फ्वकस कांछ नो सत्थ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

आई किस दिशा से ध्यानास्थ रह पहचान
जाऊं किस समय किस दिशा की ओर
अष्ट दल कमल पर वास है उनका
मात्र श्वास–प्रश्वास से सत की कांक्षा मत कर ।।

शब्दार्थ :–

दिशि – दिशा से (अर्थात् जगह से, स्थान से)

कॉवु – होशियारी, बुद्धि चातुर्य, कुशाग्र बुद्धि ध्यानस्थ रहकर, (with conscious mind)

सातु – वेला, समय

अष्टदल – अष्ट दल कमल – कुंडनिली योग के अनुसार द्वितीय और तृतीय चक्र (स्वाधिष्ठान और मणिपुर) के मध्य पीछे की ओर स्थ्थित अष्ट दलों का कमल,

वासवोनुय – वास करने वाला, रहने वाला

छेनिस फ्वकस – खाली श्वास–प्रश्वास लेने से अर्थात्
बाह्य प्रदर्शन से ।

कांछ – कांक्षा, चाहना, आकांक्षा रखना

सत – परम सत्य ।

०००

مَل ووندِ گوٗلُم
جِگر موٗرُم
تیلِ لَل ناو دڑام
ییلِ ڈٔلی ترآوی مَس تٔتی

मल व्वंदि गोलुम
जिगर मोरुम ।
तेलि लल् नाव द्राम
यलि दॅल्य त्रॉव्य्मस तॅत्य ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 86, पृ0 160

मल व्वन्दि ज़ोलुम
जिगर मोरुम
त्यलि लल नाव द्राम
यलि दॅल्य त्रॉविमस तॅती ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 37, पृ0 85

mal-wŏndi zolum
zigar morum
tĕli Lal nāv drām
yĕli dăl' trŏv'mas tăl'

ललवाक्याणी'– ग्रियर्सन स्टीन–बी0 वाख 49, पृ0

मल व्वंदि गालुम / ज़ोलुम
जिगर मोरुम ।
तेलि लल नाव द्राम
येलि दॅल्य् त्रोवमस तॅती ।।

– बिमला रैणा

कहीं कहीं इस वाख की प्रथम पंक्ति का अन्तिम शब्द 'गोलुम' के बदले 'ज़ोलुम' लिखा है।

'गोलुम' अथवा ज़ोलुम' शब्द प्रयोग से अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। चाहे 'गोलुम' शब्द लिखें अथवा 'ज़ोलुम' अर्थ में कोई विकार नहीं आता ।

वाख का चतुर्थ पद ध्यान देने योग्य है :–

' यलि दॅल्य त्रॉव्य्मस तती '

'त्रॉव्य्मस' शब्द पर ध्यान दीजिये । यह बहुवचनात्मक प्रयोग है।

' जब मैंने वहीं पर अपने आँचल छोड़ दिये' – यह प्रयोग शुद्ध नहीं है। पहने हुए वस्त्र का एक ही आँचल हो सकता है। 'दॅल्य त्रॉव्य्मस' प्रयोग सही नहीं है ।

यह होना चाहिए – ' दॅल्य त्रोवुमस तॅती' अर्थात् वही अपना सर्वस्व उसी के आँचल में डाल दिया। यह त्याग भाव की स्थिति है। अर्थ की दृष्टि से त्रॉवमस तथा त्रोवमस में पर्याप्त अन्तर है। भक्त इष्ट के सामने अपना आँचल नहीं छोड़ देता अपितु इष्ट के आँचल में अपना सर्वस्व डाल देता है जो वास्तव में पूर्ण समर्पण (total surrender) की अवस्था है ।

प्रस्तुत वाख का शुद्ध पाठ इस तरह निश्चित होता है :–

मल व्वंदि गोलुम/ज़ोलुम
जिगर मोरुम ।
तॆलि लल नाव द्राम
येलि दॅल्य् त्रोवमस तॅती ।।

हिन्दी अनुवाद :–

मन के मैल को गला दिया / जला दिया
इच्छओं का गला घोंटा
तब कहीं सिद्ध हुआ 'लल' नाम
जब (अपना सर्वस्व) उसके आँचल में डाल दिया ।

शब्दार्थ :–

व्वंदि – मानस, हृदय
जिगर मोरुम – आत्म नियन्त्रण करना
लल – ललाट में पलने वाली ललिता (ललिता का कश्मीरी रूपान्तर 'लल' है ।)
दॅल्य् – (मूल एक वचल दॊल) – आँचल ।

टिप्पणी –

शिव शक्ति का अर्धनारीश्वर स्वरूप जिसे 'काम कला रूप' भी कहते हैं, भौतिक काया में जिस जगह पर स्थित है उस जगह का नाम 'लल' है। उसी जगह पर शिव कली रूप में है। जब शक्ति का इसके साथ मेल हो जाता है तो 'कलीम' कहलाता है। ललिता पार्वती का एक नाम है जो ललाट में वास करती है और भाग्य का प्रतीक कहलाती है।

०००

{ 25 }

بان گول تائے پرکاش آو ژوِنے
ژندر گول تائے موتے ژیتھ
ژیتھ گول تائے کینہہ تہ نا کنے
گے بھور بھوہ سوہ ویسرزتھ کیتھ

बान गोल तॉय प्रकाश आव ज़ुवने
चॅन्द्र गोल तॉय मोतुय च़्यथ
च़्यथ गोल तॉय कॆंह ति ना कुने
गय भूर भुवः स्वर व्यसर्ज़िथ क्यथ ।।

—'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल— वाख 85, पृ० 158

भान्गलो सुप्रकाशा ज़ोनि
च़न्द्र गलो ता मुतो चित्त्
चित्त् ।। गलो ता किंह् ना कोनि
गय् भवा विसर्जन् कित् ।।

– ललवाक्याणि ग्रियर्सन – स्टीन–बी० वाख 21, पृ० 31

बाल गोल तय प्रकाश आव ज़ूने
चॅन्द्र गोल तय मोतुय च़्यथ।
च़्यथ गोल तय कॆंहति ना कुने
गै भूर्भुवः स्व व्यसर्ज़िथ क्यथ ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 95, पृ० 104

ब्व वान गोल तय स्व प्रकाश आव ज़ुवने
च़ ओन्दुर गोल तय मोतुय च़्यथ
च़्यथ गोल तय केंह ति ना कुने
गॅयि भूरं भुवः स्वः व्यसर्जित क्यथ

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद का प्रथम शब्द विचारणीय है –

बान – संस्कृत – भान – सूर्य, प्रकाश, ज्ञान, प्रतीति अन्तिम अर्थ को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

ब्व वान – ब्वान अर्थात् ' मैं का बोध', स्थूल अस्तित्व की प्रतीति, अपने वजूद का एहसास।

भूभुर्वः स्वः का सम्बन्ध गायत्री मन्त्र के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ शब्द के साथ है ।

भूर – भू – पृथ्वी, भू लोक, – पृथ्वी लोक, इह लोक, मर्त्यलोक, मनुष्य लोक ।

भुवः – भुवलोक, अन्तरिक्ष लोक

स्वः – ब्रह्मलोक

तीन लोक – भूलोक, भुवर्लोक, ब्रह्मलोक

आधि भौतिक – पंचभूतों से सम्बन्धित या उससे उत्पन्न
material world

आधि दैबिक – देवताओं से सम्बन्धित (divine world)

अध्यात्म लोक – आध्यात्मिक अनुभूति या मन से सम्बन्धित
world of eternal bliss pertaining to
supreme spirit

संस्कृत – भान (भानु) कश्मीरी – बान सूर्य का वाचक शब्द है अवश्य परन्तु यहाँ इस शब्द का प्रयोग लल्लेश्वरी ने 'अपने वजूद के एहसास' के सन्दर्भ में किया है। अतः 'बान' शब्द के बदले ब्वभान (ब्व वान) शब्द का प्रयोग होना चाहिए।

इसी पद के अन्तिम शब्द को देखिये यह मूलतः 'ज़ुवने' शब्द है । ज़ूने (चन्द्रमा) नहीं है ।

द्वितीय पद में 'च़न्द्र' शब्द का प्रयोग भी है। यह वास्तव में 'चु ओन्दुर' अर्थात् तेरा निजी अन्तर्बोध।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय होता है –

ब्व वान गॊल तय स्व प्रकाश आव ज़ुवने
च़ ओन्दुर गॊल तय मॊतुय च़्यथ
च़्यथ गॊल तय कॆंह ति ना कुने
गॅयि भूर भुवः स्वः व्यसर्जित क्यथ

हिन्दी अनुवाद :–

मैं का बोध मिट गया स्वप्रकाश खिलने लगा
अन्तर्बोध मिट गया तो शेष रह गया चित्त
चेतना समाप्त हो गई तो कुछ न रहा शेष
भूर भुवः स्वः में सब कुछ विसर्जित हो गया ।।

शब्दार्थ :–

ब्ववान – 'मैं' का वजूद, अपने अस्तित्व का बोध, शरीर का वजूद, संस्कृत शब्द – भान – प्रतीति, एहसास, सूर्य, प्रकाश कश्मीरी – वान

ज़ुवन – वजूद में आना, धीरे–धीरे फैल जाना

चु ओन्दुर – अन्तर्बोध

मोतुय – शेष रह गया

भूर – भू – पृथ्वी, पृथ्वीलोक, (आधिभौतिक)

भुवः – भुवर्लोक, अन्तरिक्ष लोक, (आधि दैविक)

स्वः – ब्रह्मलोक (आध्यात्मिक)

विसर्जित – अलग होना, विसर्जन होना

क्यथ – कैसे ।

ooo

آیَس تہٕ سیوٚدُے تہٕ گژھہٕ تہٕ سیوٚدُے
سیَدِس ہوٚل مےٚ کریم کیا
بہٕ تَس آسِس آگرَے ویوٚدُے
وِدِس تہٕ وینٛدِس کریم کیا

आयस ति स्योदुय तु गछु ति स्योदुय,
स्यॅदिस होल मे कस्यम क्या
ब्व तस् ऑसुस आगरय व्यदुई
वेदिस तु व्यंदिस कॅस्यम क्या ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 26, पृ0 90

आयस ति स्योदुय तु गछु ति स्योदुय
स्यदिस होल म्यँ कर्यम क्याह
बोह तस ऑसुस आगुरय व्यज़ुय
व्यदिस तु व्यंदिस कर्यम क्याह ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 03, पृ0 10

आयस ति स्योदुय गछु ति स्योदुय
सेदिस होल मे करयम क्याह
बु तस ऑसुस अगस्त्य वेज़ुय
वेदिस तु वेन्दिस कॅस्यम क्याह।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के तीसरे पद पर ध्यान देना आवश्यक है। लल्लेश्वरी वाख कहती है । नारी के मुँह से स्त्रीलिंग के बदले पुलिंग का प्रयोग क्यों हुआ। इसकी क्या आवश्यकता थी ।

ब्व तस ऑस्स आगरय व्यदुई

ध्यान दीजिये 'तस' प्रयोग के साथ 'व्योदुय प्रयोग नहीं होगा बल्कि 'वेज़य' प्रयोग होगा। लल्लेश्वरी भाषा पण्डित थीं। विशुद्धाख्य की अवस्था में वाग्देवी की उनपर विशेष अनुकम्पा थी। यह तो देव वाणी है कभी खण्डित और भ्रष्ट नहीं हो सकती है।

तृतीय पद ' **बु तस ऑसस आगरय व्यदुई' अर्थात्** ' मैं स्रोत से ही उनकी पहँचान में थी ।

मेरा विचार है कि लल्लेश्वरी ने 'आगरय शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा। उन्हें मूल स्रोत के सम्बन्ध पर विचार नहीं करना था क्योंकि प्रथम और द्वितीय पद के साथ ही तीसरे पद का सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। यह वास्तव में 'आगरै' शब्द नहीं है अपितु अगर (यदि) शब्द का बोली गत रूप है ' अग़स्य' । सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार स्थिर होता है :–

आयस ति स्योदुय गछ़ ति स्योदुय
सेदिस होल मे कर्यम क्याह
बु तस ऑसुस अगस्य वेज़य
वेदिस तु वेन्दिस कॅस्यम क्याह।।

हिन्दी अनुवाद :–

सहज भाव से आई थी जाऊँगी सहज भाव से
मुझ निश्छल को क्या ठग लेगा कोई
मैं यदि उनकी परिचित थी कोई

मुझ परिचित–चहेती को क्या बिगाड़ेगा ।

शब्दार्थ :–

वेज़ुय – परिचित
व्योद – ज्ञात, परिचित
व्यंदुन – चाहना
वेन्दिस – चहेता / चहेती

टिप्पणी –

'व्यंदुन' शब्द का प्रयोग स्वामी परमानन्द ने भी अपनी एक भक्तिपरक रचना में किया है –

त्रुज़गत पालो तन हा ऑसी सन्तान व्यन्दन
नन्दन बु करै लोलु पोशन मालो – त्रुज़गतपालो
ज़ान म्वकलेयम प्राण वन्दय चरणार्ब्यन्दन
नन्दन बु करुयो लोलु पोशन मालो – त्रुज़गत पालो "

o o

ناتھ ناپان نا پَر زونُم
سدآے بووُم اِکُے دیہہ
ژ بوٚ بو ژ میٖل نو زونُم
ژ کُس بو کوٚس چھُ ستدیہہ

नाथ ना पान ना पर ज़ोनुम
सदॉय बोवुम ईकुय देह ।
चु बॊ ब्वॅ चु म्युल नो ज़ोनुम
चु कुस ब्व क्वस छु सन्देह।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल– वाख 130, पृ0 214

नाथा ! न पान न पर ज़ोनुम
सदै बूदुम यि क्व दीह
चु बोह बोह च़ म्यॉुल ना ज़ोनुम
चु कुस बॊ क्वसु छु सन्दीह ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 20, पृ0 42

नाथा पाना ना पर्जाना
साधित् बाधिम् एह् कुदेह
चि भु चू मि मिलो ना जाना
चू कुस भु कुस छ्यों सन्देह् ।।

– 'ललवाक्याणि' स्टेन–बी0, वाख–5, पृ0 29

नाथा पाना ना पर ज़ोनुम
सदैव बूदुम ईको देह
च़ ब्व मे च़े म्युल नय ज़ोनुम
चु कुस ब्व कुस छु सन्देह ।।

– लेखिका

इस वाख के प्रथम पद का पाठ विचारणीय है। 'नाथ नापान ना पर ज़ोनुम' में 'पर' शब्द का अर्थ है – अपने से भिन्न, गैर, पराया, जो जुदा हो, अलग हो। यहाँ इस शब्द के गौण अर्थ – परमात्मा, ब्रह्म, शिव से कोई वास्ता नहीं है –'नापान' शब्द विकृत है । केवल 'पान' शब्द सही है। 'नापान' शब्द के प्रयोग से पद अर्थहीन हो जाता है। सही और शद्ध पाठ के आधार पर यह पद इस प्रकार से होगा –

' नाथा पाना ना पर ज़ोनुम '

दूसरे पद में 'सदॉय' शब्द भी विकृत है। यह शुद्ध संस्कृत शब्द सदैव (सर्वदा, हमेशा ही) अथवा संस्कृत अव्यय 'सदा' (नित्य हमेशा, निरन्तर) शब्द है। सदैव शब्द का ही तद्भव बोली गत रूप अन्तव्यंजन के लोप हो जाने से 'सदै' रहा ।

अतः 'नापान' और 'सदॉय' शब्द विकृत शब्द हैं और उनके बदले क्रमशः ' पा ना' और 'सदैव' शब्द होने चाहिए । सम्पूर्ण वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जायेगा:–

नाथा पाना ना पर ज़ोनुम
सदैव बूदुम ईको देह
चु ब्व मे च़े म्युल नय ज़ोनुम
चु कुस ब्व कुस छु सन्देह ।।

हिन्दी अनुवाद :–

नाथँ और अपनी सत्ता को भिन्न नहीं समझा
सदा एक ही रूप का बोध हुआ
आप में है, मैं आप, तत्त (तत्त्व, यथार्थ, वस्तुस्थिति) न स्वीकारना
आप कौन ? मैं कौन ? का सन्देह बना रहता

शब्दार्थ :–

नाथा – स्वामी, ईश्वर, भगवान
पर – पराया, गैर, अपने से भिन्न, अलग
सदैव – संस्कृत मूल शब्द ' सदैव' – हमेशा
बूदुम – संस्कृत मूल शब्द 'बोध' – जानना, ज्ञान, जानकारी
सन्देह – संस्कृत मूल शब्द ' सन्देह' – शक, अनिश्चय
ईको – संस्कृत मूल शब्द 'एकम्'
देह – संस्कृत मूल शब्द 'देह' – शरीर ।

○○○

یِمےَ شےٚ ژےٚ تِمےَ شےٚ مےٚ
شیامہ گلا ژےٚ وین تاأٹسٕ
یوٚہےَ بین بھیدٕ ژےٚ تہٕ مےٚ
ژٕشَن سوأمی بو شےٚ مُشِس

यिमय शे चे़ तिमय शे मे
श्यामु गला चे़ ब्यन तॉटुस।
योहय ब्यन भीद चे़ तु मे
चॅ़ शन स्वॉमी बो शे मुशिस ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल– वाख 129, पृ0 210

एमय् मुचि तिमय षय मि
श्याम गला चि़यी विन् तुट्टस ।
एहुय भिन्न भेद् चि ता मि
चू षन् स्वामी भु षन मूढ़स ।।

'ललवाक्याणी' – ग्रियर्सन – स्टेन–बी0, पृ0 35 वाख–1

इमय श्यॅ च़्य तिमय श्यॅ म्यॅ
श्यामुगला च़्यॅ ब्य़ोन तॉठिस
युह़ोय ब्यन–बीद च़्य तु म्यॅ
चु श्यन स्वमी बोह शॅयि म'शिस ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 21, पृ0 44

यिमय शे चॆ तिमय शे मे
शेयमि अगोला चॅ ब्यन तॉटिथ
य्वहोय ब्यन भीद चे़ तु मे
चु शन सॉमी ब्व शेयि मुशिस ।।

– लेखिका

जिन छः गुणों अथवा शक्तियों को विद्वानों ने वाख की व्याख्या करते हुए गिनाया है वे इस प्रकार है :–

1. माया शक्ति (परमेश्वर की अव्यक्त बीज रूप शक्ति)
2. सर्व कृतत्व
3. सर्व गणत्व
4. पूर्णत्व
5. नित्यत्व/नित्यता (अविनाशिता) नित्य होने का भाव
6. व्यापकत्व

और जीव में यही गुण इस प्रकार हैं – माया, कला, विद्या, राग, काल नीति ।

यह तो बात ठीक है लेकिन लल्लेश्वरी और भी छः अवस्थाओं की ओर संकेत करती है । वे अवस्थाएँ इस प्रकार हैं :–

1. मूमलाधार
2. स्वाधिष्ठान,
3. मणिपुर
4. अनाहत
5. विशुद्धाख्य
6. आज्ञा चक्र ।

इनका सम्बन्ध जीवन की छः अवस्थाओं, छः ऋतुओं और छः विकारों से भी है।

ये छः अवस्थाएँ आप और मुझ में समान रूप से हैं। परन्तु इस छठे चक्र के बाद ' मैं ' आप से अलग हो जाती हूँ। ' मैं' तो आवागमन के चक्र में फंसा अनवरत क्रिया रत हूँ और 'आप' छठे चक्र के बाद सहस्रार कैलास के वासी बन परमानन्द मग्न हैं। अतः छठे चक्र से अलग अथवा बाद में अन्तर आ जाता है। आप अजर, अमर, शाश्वत, परम सत्य, सत्यम, शिवम् और सुन्दरम् के अक्षय संचित भण्डार हो और मैं जन्म–मरण के बन्धन में बन्धा, माटी की काया में उलझा तथा सांसारिक एषणाओं में जकड़ा क्षणिक जीव हूँ । यही अन्तर आप और मुझ में है। आप छः चक्रों या अवस्थाओं के स्वामी और मैं (काम, क्रोध, लोभ, मोक्ष, माया, अहंकार). छः अजगरों से डसा हुआ हूँ ।

इस वाख के द्वितीय पद पर ध्यान दीजिय –

' श्याम गला' – अशुद्ध है। इस शब्द का कोइ अर्थ नहीं है। नीला और श्याम समान नहीं हैं। यह वास्तव में 'श्येमि अगोला' शब्द खण्ड है। 'ब्यन' शब्द भिन्नता या भेद/अन्तर/फ़र्क के लिये प्रयोग में लाया जाता है। इस पद में 'तॉटिस' शब्द का प्रयोग किया गया है जो व्यर्थ है। यह मूलतः 'तॉटिथ' शब्द है। टोठ (प्यारा) से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत होता है –

यिमय शे चे़ तिमय शे मे
शेयमि अगोला चॅ़ ब्यन तॉटिथ
य्वहोय ब्यनु भीद चे़ तु मे
चु शन सॉमी ब्व शेयि मुशिस।।

ताटन – संस्कृत मूल शब्द 'ताडना' / 'ताडन' यथार्थ का क्षण
में आभास, भाँपना, जान लेना, समझाना;
कश्मीरी – ताटन ।

हिन्दी अनुवाद :–

जो षट (तत्त्व/अवस्थाएँ/चक्र) तत्त्व है।, तुझ में वही मुझ में
छठी अवस्था से आगे अलग है आप, यह जाना
यही अन्तर और वैषम्य है तुझ में मुझ में
आप हैं छः के स्वामी और मुझे लूटा छः नें ।

शब्दार्थ :–

श्यमि – छटे
अगोला – जो गलता नहीं है
ब्यन – अन्तर
तॉटिथ – संस्कृत मूल शब्द – ताडना/ ताडन (ताड़ लेना, समझ लेना, भाँपना, जान लेना)
भीद – भेद, अन्तर
सॉमी – स्वामी, मालिक
मुशिस – लूट लेना ।

ooo

یتھ سَرس سَرٕ پھوٚل نا ویژی
تتھ سَر سَکلی پوٚنی چَن
مرگ سرٕ گال گنڈی زَل ہستی
زین نا زین تہٕ توتے پین

यथ सरस सर फोल न वेच़ी
तथ् सरि सकली पोन्य चन ।
मृग, स्रगाल गाँड्य ज़लु हॅस्ती,
ज़्यन ना ज़्यन तु तोतुय प्यन ।।

'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 114, पृ0 192

यथ सरस सरिफ़ोल नु व्यचे़
तथ सरि सकलुय पोञ चन ।
मृग सृगाल गॅण्डय ज़लहॅस्यती
ज़्यन ना ज़्यन तु तोु तुय प्यन ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 59, पृ0 132

यत् सर् सर्षपफलो ना विचि
तत् सर सकलीय ।। पून्नो च़्यिन्
मृग सृगाल । गण्डी जल् हस्ती
जिन् ना जिन् ता ततोय् पिन् ।।

'ललवाक्याणी' – स्टेन–बी0 ,वाख 47/4 पृ0 66

यथ सरस सरषफ़ फोल ना वेपी/वेची
तथ सरस सकल पोन्यु चन
मृग सृगाल गंड्ड ज़ालु हॅस्ती
ज़्यन नु ज़्यन तु तोतुय प्यन।।

– लेखिका

वाख के प्रथम पद में 'सर फोलॅ' विकृत शब्द है। स्टेन महोदय एवं श्री भास्कर राज़दान साहब ने 'सरषफ फोलॅ' शब्द का प्रयोग किया है जो शुद्ध है। सरशफ़ (फारसी) अथवा सर्शप (संस्कृत) सरसों के लिये प्रयोग में लाया जाता है। यहाँ अत्यन्त क्षुद्र दाने के अभिप्राय से प्रयुक्त हुआ है। ग्रियर्सन महोदय ने 'सर' शब्द को सृष्टि के अर्थ में प्रयोग में लाया है जो सही नहीं है। द्वितीय पद में 'सकली' शब्द का प्रयोग किया गया है यह मूलतः सकल शब्द है जो सांसारिक संकल्पों से ग्रस्त मनुष्य की मानसिक स्थिति का वाचक है। संकल्प मन का बन्धन है और संकल्प का अभाव मन की मुक्ति है। संकल्प के शान्त होने पर संसार के सब दुख मूल सहित नष्ट हो जाते हैं।

' ग्रॅण्ड् – कश्मीरी भाषा में बडे आदमी, सम्पन्न व्यक्ति के लिये प्रयोग में लाया जाता है। तृतीय पद में 'मृग' 'सृगाल' के बाद यह 'ग्रॅण्ड ज़ल् हस्ती' नहीं है अपितु 'गंड्ड ज़ालि हस्ती' शब्द–खण्ड है। 'ज़ल् हस्ती' शब्द प्रयोग विचारणीय है। यह गेंड़ा जानवर के लिये प्रयोग नहीं है। यह वास्तव में गंड शब्द है जो बान्ध अथवा बांधने का बोध कराता है। 'ज़ल्' शब्द भी अशुद्ध है यह मूलतः 'ज़ालु' अर्थात् लोह श्रृंखलाओं के जाल में फंसे हुए बन्द हाथी हैं वे जो जाल में फंस गये हैं अथवा उलझ गए हैं।

प्रस्तुत वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत हो जाता है–

यथ सरस सरषफ़ फॊल ना वॆपी/वॆच़ी
तथ सरस सकलि पोन्यु चन
मृग सृगाल गंडु ज़ालु हॅस्ती
ज़्यन नु ज़्यन तु तॊतुय प्यन।।

हिन्दी अनुवाद :–

जिस सरोवर में सरषफ के दाने के समान अविवेक
नहीं समायेगा
उसी सर से संकल्पग्रस्त जन अमृत रूपी पानी पियेंगे
मृग, सृगाल बलिश्ठ और विशालकाय जालों में फंसे हुए
हाथी रूपी संकल्प जन्मते ही वहीं समा जायेंगे ।।

शब्दार्थ :–

सरषफ फॊल – सरसों का दाना
व्यचुन/व्यच़ान –समझ में आना, स्वीकार करना,ग्रहण करना
ज़ालु हस्ती – लोहें के सांकलों से बुना जाल, जिस में
जानवर उलझ के रह जाता है।
सर – सर, ताल,जलाशय, यह 'मनसर' अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।
ज़्यन नु ज़्यन – जीवन धारण करते ही
वॆपी – समा जाना ।
सकल – सांसारिक संकल्पों में उलझा हुआ मानव ।

०००

{ 30 }

ترٕیہٕ نیٚنگہٕ سراہ سٔرۍ سرس
اکہِ نیٚنگہِ سرس عرشس جاے
ہر مۄکھ کوثرٕ اکھ سم سرس
ستہِ نیٚنگہِ سرس شیٖنیاکار

त्रेयि न्यंगि सराह सॅस्य सरस
अकि न्यंगि सरस अर्शस जाय ।
हरम्वखु कवसॅर अख सुम सरस
सति न्यंगि सरस शिन्याकार ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 115, पृ0 194

त्रयि न्यंगि सराह सॅर्य सरस
अकि न्यंगि सरस अर्षस जाय।
हरम्वखु कौंसरु अख सुम सरस
सति न्यंगि सरस शून्याकार ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 58, पृ0 130

trayi nĕngi sarāh sár^{i} saras.
aki nĕngi saras arshĕs jāy
Haramŏkha Kaũsara ákh sum saras
sati nĕngi saras shũnākār

'ललवाक्याणी' – स्टेन–बी0 ,वाख 50, पृ0 68

त्रैयि न्यंगि सारन शरीर सारस
अकि न्यंगि सारस अर्शस जाय
हरुम्वखु कोंसर अख सुम सरस
सत् न्यंगि सारस शुन्याकार ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद विचारणीय है । 'सराह सॅर' शब्द से क्या अभिप्राय है, समझ में नही आ रहा है। हम इस तथ्य से परिचित हैं कि लल्लेश्वरी ने व्यर्थ शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। समय के चक्र में पड़ कर शब्द विकृत हो गये और मूल अर्थ से कोसों दूर चले गए। यह 'सराह' शब्द नहीं है अपितु 'सारन' शब्द है जिसका अर्थ है खोजना, ढूँढना। इस प्रकार यह 'सॅर' शब्द भी नहीं है अपितु 'शरीर' शब्द है। इस लिये 'सराह सॅर' के बदले 'सारन शरीर' है जिसका अर्थ है शरीर को खोजना/ढूँढना/टटोलना । द्वितीय पंक्ति में 'अक् न्यंगि सरस' न होकर 'अक् न्यंगि सारस' शब्द खण्ड है जिसका अर्थ है एक बार ढूँढना/खोजना/तलाशना।

लल कहती है कि तीन बार शरीर के सार की थाह ली। यह वास्तव में स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म की ओर संकेत है अथवा पर, अपर और परापर का स्थिति बोध है। 'हरमुख' और 'कोंसर' नाम से कश्मीर में दो प्रसिद्ध पहाड़ी झीलें हैं। उत्तर में हरमुकुट तथा दक्षिण कश्मीर में कोंसर नाग स्थित है । तनिक शरीर की ओर ध्यान दीजिए । सहस्रार से मूलाधार तक एक सुम (पुल) परस्पर सम्बन्ध का पुल स्थापित करती। 'हरमुख' और कोंसर दोनों इस शरीर के भीतर ही मौजूद हैं।

छठे चक्र से निकल कर ब्रह्मरन्द्र में प्रवेश पाकर सातवें चक्र अर्थात् सहस्रार (कैलाश) में प्रवेश मिलता है अर्थात् अणु परमाणु में लय हो जाता है। अन्तिम पद में भी 'सरस' शब्द का प्रयोग शुद्ध नहीं है इसके बदले 'सारस' (सार) शब्द का प्रयोग होना चाहिए। जब साधक स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म अवस्था में आ जाता है तो उसका अतिसूक्ष्म अनुभव अर्थात् सार शून्य ही है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार स्थिर हो जाता है–

त्रेयि न्यंगि सारन शरीर सारस
अकि न्यंगि सारस अर्शस जाय
हरम्वखु कोंसर अख सुम सरस
सत् न्यंगि सारस शुन्याकार ।।

हिन्दी अनुवाद :–

तीन बार शरीर सार की थाह ली
एक बार टटोला तो आकाश पर निवास
(ऊँची पद्वी खोजना)
'हरमुख' से कोंसर (हृदय) तक (ऊपर से नीचे तक)
एक सुम (पुल) का बन्धन पाया
(तीसरी बार) सत्य पथ (अतिसूक्ष्म) खोजा शून्याकार ।

शब्दार्थ :–

न्यंग – (कश्म0) बार, समय, काल
सारन – टटोलना, खोजना, ढूँढना
अरश – (अरबी) आलमे बाला (परलोक, देवलोक, आकाश)

दमुहाह दोमुमस दमन हाले
प्रज़ल्योम दीफ तु ननेयम ज़ाथ
अन्दर्‌युम प्रकाश न्यबर छोटुम
गथि रोटुम तु कॅरमस थफ ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद पर्याप्त विवादास्पद रहा है।

लुहार की दुकान पर आग तपाने के हेतु श्वास फूँकने का एक पारम्परिक लोहे का यन्त्र होता है जिसे कश्मीरी में 'दमन हाल' कहते हैं। देखा जाये मानव शरीर के भीतर भी प्राण शक्ति को गति प्रदान करने के हेतु प्रश्वास–निश्वास क्रिया निरन्तर चलती रहती है और श्वास नालिका ही 'दमनहाल' का रूप धारण कर ध्वनि यन्त्र को सक्रिय बना देती है।

प्रो0 जयलाल कौल और नन्दलाल तालिब साहब 'दमाह्दम्' शब्द को अस्वीकार करते हुए 'दम् दम्' शब्द को शुद्ध मानते हैं जिसका अर्थ है ' धीमी गति से ' ।

यह 'दमु दमु कोरॅमस दमन आये' नहीं है अपितु 'दमहाः दोमुमस दमन हाले' है। जिसका सम्बन्ध प्राणायाम की प्रथम तथा द्वितीय क्रिया से है। प्राणायाम में तीन अवस्थाएं मानी गयी हैं – पूरक, कुम्भक, रेचक । पूरक का अर्थ है प्रश्वासाकर्षण। गायत्री मन्त्र पाठ के साथ शुद्ध वायु को बाहर से खींच कर श्वास नालिका के द्वारा भीतर फेफड़ों में पहुँचा कर अन्दर लिये हुए वायु को जब कुछ क्षण रोका जाये ताकि समस्त धमनियों में प्राण संचरित हों – कुम्भक क्रिया कहलाती हैं।

इस श्वास अवरोध क्रिया की ओर संकेत करते हुए लल्लेश्वरी कहती हैं कि इस दमन हाल अर्थात् ध्वनि–यन्त्र के भतीर मैंने प्रश्वास को

प्रश्वास–नालिका के भीतर रोका।

'दमुन' कश्मीरी शब्द है और अर्थ है आग को तेज़ करना, फूँक मारना। लुहार की 'दमनहाल' से आग तेज़ करने के लिये दमन हाल को सक्रिय करना।

'दमुन' से ही 'दोमुमस' क्रियावाचक शब्द बना है।

'दम' – श्वास, प्राण शक्ति, हवा इत्यादि को कहते हैं।

'दमः दोमुमस' अर्थात् शरीर रूपी दमनहाल के भीतर खींचे हुए श्वास (प्रश्वास) को रोक कर नियन्त्रण में किया और तत्पश्चात् धीरे–धीरे बाहर छोड़ा, यही प्राणायाम की प्रक्रिया है।

'दमन आये' प्रयोग भी उचित नहीं है यह तो निर्विवाद रूप से 'दमन हाले' शब्द है।

वाख के चतुर्थ पद में 'गटि' शब्द भी अशुद्ध है। 'गटि रोटुम' का किसी विशेष सन्दर्भ में अर्थ हो सकता है पर सामान्य रूप से नहीं। यह वास्तव में 'गथि' शब्द है।

कश्मीरी भाषा में 'गथ करन्य' अर्थात् किसी प्रक्रिया में निरन्तर रत रहना। इस प्रश्वास–निश्वास क्रिया में निरन्तर उसी गत/गति में रत रह कर मैंने उसे पहचाना और वश में किया ।

'प्रश्वास–निश्वास' क्रिया में निरन्तर रत रहने का सम्बन्ध वास्तव में 'प्राणायाम' क्रिया के साथ है।

प्राणायाम अष्ट योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। योग–साधक के लिये प्राणायाम की प्रक्रिया से गुज़रना नितान्तावश्यक है।

वास्तव में तप्त स्वर्ण के से वर्ण वाला और बिजली की सी तेज़ धारा के समान सुप्रकाशित अग्नि स्थान से चार अंगुल ऊर्ध्व और मेढ्र स्थान

के नीचे स्व–शब्द युक्त प्राण स्थित है, जो स्वाधिष्ठान चक्र के आश्रय में रहता है। मेढ़ू के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र है वहाँ मणि के तन्तु के समान वायु से पूर्ण शरीर है। नाभिमण्डल में जो चक्र है वहीं मणिपूरक कहा जाता है। वहीं पर बारह आरा वाले महाचक्र में पुण्य पाप का नियन्त्रण होता है । जब तक ज़ीव इस तत्त्व को नहीं जान लेता तब तक उसे भ्रमते रहना पड़ता है। लल्लेश्वरी इसी की ओर संकेत करती है कि मैंने अपनी आत्मा को इस भ्रमन से रोका, यही 'गथि रोटुम' कहलाता है। शरीर रूपी 'दमन हाल' से प्राण रूप शक्ति का संचरण ही जीवन को गति प्रदान करता है। मैंने क्रियारत (अभ्यास रत) आत्मा को पहचाना इसी नियन्त्रण/नियमन प्रक्रिया से ।

वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार से हो जाता है –

दमुहाह दोमुमस दमन हाले
प्रज़ल्योम दीफ तु ननेयम ज़ाथ
अन्दर्युम प्रकाश न्यबर छोटुम
गथि रोटुम तु कॅरमस थफ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

(पूरक क्रिया से कुम्भक तक) श्वास क्रिया नियंत्रित
श्वास धमनियों में
प्रज्वलित हुआ दीप और मिल गई पहचान
भीतरी प्रकाश से हुआ प्रज्वलित बाह्याकार
इसी गतिचक्र में मैंने उसको (आत्मा को) पकड़ लिया।

शब्दार्थ :–

दमाह – प्रश्वास (श्वास जो हम भीतर खींचते हैं)

दोमुमस – वेग से श्वास भीतर खींच कर कुम्भक की अवस्था में रोक कर नियंत्रण में किया

दमन हाले – लोहार की अंगीठी तेज़ करने के हेतु लोहे की नंली, एक पारम्परिक यन्त्र जो आग को तेज़ करता है – फूँक के द्वारा मनुष्य शरीर में प्रश्वास–निश्वास की क्रिया भी 'दमन हाल' का सांकेतिक प्रयोग मानव की श्वास प्रक्रिया रत ध्वनि नियंत्रण हेतु भी किया जाता है।

'गथि' – आवागमन, निरन्तर चलायमान रहने की प्रक्रिया ।

ooo

{ 32 }

کیاہ کَرِ پانژَن دَہَن تہٕ کاہَن
ووکھشُن یتھ لیچھِ کَرِتھ یِم گے
سآری سمہَن یتھ رَزِ لَمہَن
اَدِ کیازِ راوِ ہے کاہَن گاو

क्या करु पांच़न दहन त काहन
व्यखशुन यथ लेजि कॅरिथ यिम गॅय ।
सॉरी समुहन यिथ रज़ि लमहन,
अदु क्याज़ि राविहे काहन गाव ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 6, पृ0 66

क्याह कर पाँच़न दह्‌न तु काहन
व्क्षुन यथ ल्यॅजि यिम कॅरिथ गॅय।
सॉरिय समुहन यॅथ्य रज़ि लमुहन
अदु क्याज़ि राविहे काहन गाव ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 60, पृ0 134

क्या करु पांच़न, दहन तु काहन
व्ह अख्युन यथ लेजि यिम कॅरिथ गॅय
सॉरी समतुहन अँथ्य् रज़ि लमुहन
अदु क्याज़ि रावि हे कोहन गाव ।

– लेखिका

वाख के द्वितीय पद में प्रथम शब्द 'वोखशुन' का प्रयोग किया गया है । 'वोखशुन' का शाब्दिक अर्थ है – बरतन में से एक–एक दाना निकाल कर ले जाना । 'वोखशुन–करुन' का अर्थ है – कड़छी से अथवा हाथ से खरोंच कर निकालना।

पाँच से तात्पर्य यहाँ पाँच भौतिक मोह पाशों से है अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार।

दस से तात्पर्य दश नाड़ियों से है जिनकी तांत्रिक क्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

पाँच प्राण – प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान

ग्यारह से तात्पर्य – पाँच ज्ञानेन्द्रिय + पाँच कर्मेन्द्रिय + मन। ये पाँच भौतिक मोह–पाश, दस नाडियाँ और मन के साथ दस इन्द्रियाँ इस शरीर रूपी हांडी में 'वोखशुन' कर गये, खरोंच कर क्या निकालेंगे ? समझ में नही आता ।

यह शब्द वास्तव में 'वोखशुन' नहीं है अपितु 'व्वह अख्युन' शुद्ध है। 'व्वह' का शाब्दिक अर्थ है – तप्त होना और 'अख्युन' – कश्मीरी में कु–शुब्द है, विनाश का वाचक है।

तृतीय पद में 'समहन' शब्द का प्रयोग हुआ है। समहन का शाब्दिक अर्थ है – इकट्ठे हो जाना । इस पद में 'समहन' के स्थान पर अधिक उपयुक्त शब्द 'समतहन' होगा । यह वास्तव में 'समुत' शब्द का विकसित रूप है। 'समुत करुन' का शाब्दिक अर्थ है – उद्देश्य प्राप्ति के हेतु मिलकर प्रयास करना, परस्पर एका स्थापित करना।

वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

क्या करु पांचन, दहन तु काहन
व्वह अख्युन यथ लेजि यिम कॅरिथ गॅय

सॉरी समतुहन ॲथ्य् रज़ि लमुहन
अदु क्याज़ि रावि हे कोहन गाव ।

हिन्दी अनुवाद :–

क्या करूँ पाँच, दस और ग्यारह का
क्या करूँ हांडी (देह) का व्यथा से नाश करके चले गये
सब यदि भाई चारे की भावना से इस रस्सी को खींच लेते
तो फिर परस्पर एक्य (एकता) क्यों नहीं रहता ।

शब्दार्थ :–

पाँच – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार
दाह – दश प्राण, (दश नाड़ी)
काह – पाँच ज्ञान इन्द्रिय + पाँच कर्म इन्द्रिय + मन ।
व्वह – निरन्तर तेज़ होता हुआ, तपता हुआ
अख्युन – विनाश
समतुहन – भाई चारा, बन्धुत्व, एक हो जाना
रज़ि – विचार, ख़याल।
कोहन – पर्वतों पर (चुॅ क्याह अकि कोहु खसान त बॆयि कोहु वसान)

०००

{ 33 }

آنچار ہانژِ ہنٛد گوم کنن
نَدُر چھُو تہٕ ہیٚیِو ما
تہٕ بوز ترٛکیو تِم رودی وَنن
ژینُن چھُو تہٕ ژیٖنِو ما

आँचार हाँज़ुनि हुन्द गोम कनन
नदुर छुवु त हेयिव मा।
ति बूज़ त्रुक्यव तिम रूद्य वनन
चे़नुन छुवु तु चीनिव मा।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 198, पृ0 278

आच़ार हू अंज़नि हुन्द गोम कनन
न दॅर्य छिव तय हेह ह्योव मा।
ती बूज़ त्रुक्यव तिम रूद्य वनन
चे़नुन छुवु तु चीनिव बा।।

– लेखिका

वाख में प्रथम पद के आरम्भिक दो शब्द 'आँचार हाँज़नि' (आँचार झील की हाँजिन) यह अर्थ विकृत शब्द रूप के कारण ही प्रयोग में लाया जाता है। यह झील आँचार की बात नहीं है और न आँचार के नदरू (कमल ककड़ी – एक सब्ज़ी) के विषय में ही लल्लेश्वरी बात करती है।

कहाँ आध्यात्म ज्ञान चिन्तन और आनन्द अनुभव की पहचान और कहाँ झील आँचार और उसमें उगने वाली कमल ककड़ी।

यह वास्तव में 'आच़ार हू अंज़नि' शब्द है। आच़ार का प्रयोग –[intution] सहज बुद्धि, नियम पालन, अन्तर्बोध, व्यवहार का तरीका आदि के लिए किया जाता है। आचार–आमद (जो भीतर आये) के लिये भी व्यवहार में लाया जाता है, व्यच़ार का प्रयोग–चिन्तन के लिये किया जाता है। जिस पर विचार किया जाये। इसी लिये शब्द बना है – आच़ार – व्यच़ार । हू – हा – प्रश्वास–निश्वास प्रक्रिया के बोधक शब्द हैं।

अतः हू – अंजनि – हू – हंसनी – श्वास–प्रश्वास रूपी हंसनी। प्रश्वास–निश्वास रूपी हंसनी का नाद सहज अन्तर्बोध के रूप में कानो में गूँजा – अर्थात् मेरे कानों में अपनी ही आत्मा की आवाज़ सुनाई दी ।

द्वितीय पद में 'नॅदुर' (नदरू, कमल ककड़ी) का प्रयोग नहीं है। नॅ दॉर अर्थात् 'मज़बूत नहीं यानी असमर्थ ।

इसी प्रकार 'हेयिव मा' (खरीदो गे तो नहीं) का प्रयोग नहीं हुआ है अपितु 'हेह ह्यीव' (व्यर्थ भयभीत मत हो जाओ) का विकसित रूप – 'हेह ह्योव' का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

आच़ार हू अंज़नि हुन्द गोम कनन
न दॅर्‌य छिव तय हेह ह्यॊव मा।
ती बूज़ त्रुक्यव तिम रूद्य वनन
चे़नुन छुवु तु ची़निव बा ।।

हिन्दी अनुवाद :–

सहज अन्तर्बोध के रूप में 'हू' हँसनी (प्रश्वास–निश्वास
रूपी हंसनी) का नाद कानों में गूँजा,
असमर्थ हो तो व्यर्थ साँस मत गँवा देना (चिन्तित
मत होना)
बुद्धिमानों ने बात सुनी और जंगलों की राह ली (मोह माया
से दामन छुड़ा लिया)
यदि चेतना है तो चेत लो ।

शब्दार्थ :–

आचा़र – सहज अन्तर्ज्ञान, आन्तर्बोध, सहज बुद्धि,
व्यवहार का तरीका, नियम पालन, आचा़र–आमद
(जो भीतर आये)

व्यचा़र – चिन्तन

हू–अंज़नि – 'हू' – हँसनी

'हू' – प्रश्वास–निश्वास रूपी हँसनी

न दॉर – नश्वर, असमर्थ, जो मज़बूत नहीं

हेह ह्योव – मूल (हेह हे मा – व्यर्थ चिन्ता मत करो ।)
– व्यर्थ साँस मत गँवा देना

त्रुक्य – बुद्धिमान, हुशियार, तेज़

चे़नुन – पहचाना, चेतना ।

०००

{ 34 }

آچارِ بِچارِ وِچار ووٚنُن
پرٛان تہٕ رٕوہن ہیٚیِو ما
پرٛانس بٔزِتھ مزا چُہُن
نَدُر چھُو تہٕ ہیٚیِو ما

आँचॉर्य बिचॉर्य व्यचार वोनुन
प्रान तु र्वहन हेयिव मा ।
प्राणस बॅज़िथ मज़ा चुहुन
नदूर छुव तु हेयिव मा ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 199, पृ0 278

आचारु ब्यचारु नु व्यचार वोनुन
प्राण छु रूह हुहन हेह ह्योव मा।
प्राणस बॅज़िथ मज़ा चुहुन
न दॅर्य छिवु तय हेह ह्योय मा ।।

– लेखिका

'आँचार्य बिचॉरय्' बिल्कुल निरर्थक शब्द प्रयोग हैं । यह वास्तव में 'आचार व्यचार न ' शब्द प्रयोग है जिसका तात्पर्य है बिना सोच समझ के नहीं अपितु विचार करके । द्वितीय पद में 'प्राण' शब्द श्वास प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। इस पद में 'रोहन' शब्द

लहसुन (सं० लशुन/लशून) का वाचक शब्द नही है अपितु 'रूह' आत्मा की प्रतीति करता है। इसी प्रकार 'प्राण' पलांडु (संस्कृत) – प्याज़ का वाचक नहीं है।

'हेयिव' शब्द भी अशुद्ध है। यह वास्तव में हेह ह्योव मा (हेह, हॅयिव मा) शब्द है ।

चतुर्थ पद में 'नदुर' नदरू का वाचक नहीं है अपितु ' न दॉर' अर्थात् स्थिर–चित्त न हो । प्रस्तुत वाख में मूल शब्द सर्वाधिक विकृत हो चुके हैं अतः पाठ को समझना मुश्किल हो रहा है। लल्लेश्वरी का यह वाख प्राण (पलांडु) रोहन (लहसून) तथ नदरू (एक सब्ज़ी) और हेयिव (खरीदना) के रूप में अर्थ–च्युत हो गया ।

वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार हमारे सामने आता है–

आचा़रु ब्यचा़र नु व्यचा़र वॊनुन
प्राण छु रूह हुहन हॆह ह्योव मा।
प्राणस बॅज़ि़थ मज़ा चुहुन
न दॅर्‌य छिव तय हॆह ह्योय मा ।।

हिन्दी अनुवाद :–

बिना सोच समझ के नहीं, विचार करके कहा
(आचार–विधि से तत्त्व परीक्षण पर विचार व्यक्त किया)
आत्मा ही प्रश्वास–निश्वास क्रिया से जुड़ा है, चिन्ता मत कर
प्राण को प्राणायाम से अनुशासित कर, आनन्द भोग
नश्वर हो अशक्त, मत हो जा विचलित ।

शब्दार्थ :–

आचा़र–व्यचा़र – सोच समझ, विवेक बुद्धि, ज्ञान चक्षु
व्यचा़र – चिन्तनीय बात, विचारणीय कथ्य, विमर्श

प्राण – प्राण तत्त्व, श्वास–निश्वास चक्र

रूह हुहन – (रूह) – आत्मा श्वास चक्र चलाता है।

हेह ह्योव मा – (हेह ह्य मा) चिन्ता मत कर ,

प्राण बॅज़ित – प्राण शक्ति को अनुशासित करना

(यह प्राणायाम से ही सम्भव है।)

न दॉर – अस्थायी, अशक्त, नश्वर ।

०००

دیو وٹا دِوُر وٹا

پیٹھ بون چھےُ ییک واٹھ

پوٗز کس کرکھ ، ہوُٹ بٹا

کر مَنَس تہ پَوَنَس سنگاٹھ

दीव वटा दिवुर वटा
प्यठु ब्वन छुय यीकु वाठ।
पूज़ कस करख हूटु बटा
कर मनस तु पवनस संगाठ ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 66, पृ0 136

दीव वटा दीवर वटा,
प्यठु–ब्वनु छुय ईकुवाठ ।
पूज़ कस करख हूटु बटा
कर मनस तु पवनस संगाठ

The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 55, पृ0 123

देव् वट्टा देवरो वट्टा,
पिट्ठ बुन् छ्योय् एक वाट् ।
पूज़ कस् करिक् होट्टा बट्टा
कर् मनस तु पवनस् ।। सङघाट् ।।

'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन, – वाख 07 स्टीन–बी पृ0 39

dēv waṭā diwor^u waṭā
pĕṭha bŏna chuy yēka wāṭh
pūz kas karakh, hoṭā baṭā !
kar manas ta pawanas sangāṭh

– ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 17 पृ0 39

दीववटा देहवर वटा
प्यठु ब्वनु छुय इको वाठ
पूज़ क्वसु करख ह्युत बा हठा
कर मनस तु पवनस संगाठ ।।

– लेखिका

'वाख का प्रथम पद विचारणीय है :–

'दिवुर वटा ' – 'दिवर' – कश्मीर के दक्षिण में स्थित एक जगह का नाम जहाँ विशेष प्रकार का पत्थर उपलब्ध है।

'वट' सं0 वटी – ठोस गोलाकार पत्थर, गोली, छोटा गेंद ।

यह वास्तव में 'दिवुर वटा' नहीं है अपितु 'देहवर वटा' शब्द प्रयोग है। अर्थात् देह को वरण किया हुआ भी आत्म–रूप है (शरीर धारी जीव) । कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे देवता का ठोस आकार रूप हो या देह को वरण किया हुआ आत्मा का अदृश्य रूप हो । जीव के भीतर आत्म तत्त्व तो उसी अदृश्य का अंश मात्र है। अतः एक ही मूल तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है । कण–कण में एक ही तत्त्व का आभास मिलता है। अणु–अणु परस्पर जुड़ा हुआ है।

'प्यठु ब्वनु ' – अर्थात् शून्य और पृथ्वी पर सर्वत्र एक ही शक्ति क्रीडारत है।

यह 'हूट बटा ' नहीं है जैसा कि तृतीय पद में प्रयोग किया गया है अपितु ' ह्यतु बाहठा' है। दृढ निश्चय के साथ मन और पवन के संघाट में जुट जा ।

प्रस्तुत वाख का सही पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार स्थिर हो जाता है :–

दीववटा देहवर वटा
प्यठु ब्वनु छुय इको वाठ
पूज़ क्वसु करख ह्यतु बा हठा
कर मनस तु पवनस संगाठ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

देवमूर्ति (ठोस गोलाकार शिला) अथवा देहवरण किया
हुआ आत्मरूप
दोनों हैं सम और एक ही तत्त्व (एक तत्त्व में
सब हैं विद्यमान)
कौन सी पूजा करेगा, करले प्रण
मन और पवन के संघाट में जुट जा
(प्राणायाम के अभ्यास में जुट जा, ज्ञानचक्षु खुल जायेंगे और सृष्टि शिवमय दिखेगी)

शब्दार्थ :–

वट – गोलाकार पत्थर

दीव वठा – देव मूर्ति (ठोस शिला)

देहवर वट – देह (शरीर) को वरण किया हुआ भी शिला समान

संगाठ (कश्म0) सं0 संघाट– समेट लेना, एकत्र करना, मेल करना, जोड़ना, जोड़ मिलाना

ह्यतु बां हठा – दृढ़ निश्चय कर ले, प्रण कर ले ।

०००

{ 36 }

تُرِ سِلِل کھوٹ تَے تُرے
ہِمِ ترٛیٚ گَے بیٚن ابیٚن وِمَرشا
ژیتَنِ رَو یاتِ سَب سَمے
شِوے ژراژَر زگ پَشا

तुरि सलिल खोट तय तुरे
हिमि त्रे गॅय ब्योन अब्योन विमर्शा
चे़तनि रव वाति सब समै
शिव़मय च़राच़र ज़ग पशा ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 83, पृ0 156

तूरि सलिलु खोतु तय तूरे
ह्यमि त्र्यॅ गय ब्योन अब्योन व्यमर्षा ।
चेतनि रव वाति सब समे
शिवुमय च़राच़र ज़ग पश्या

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 48, पृ0 110

तूळि सलिल् ।। खटो ता तूळ
हिम्मे त्रि गय् ।। भिन्नो भिन्न विमर्शा ।
चेतन ।। रव् नारौ बाति ।। सब् सम्मे
शिव मैं च़राच़र जग् पश्शा। ।।

– 'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन,स्टीन–बी वाख 13

tūri salil khotᵘ töy tūrē
hīmi trᵃh gay bĕn abĕn vimārshā
ćaitanyĕ-rav bāti sąb samē
Shiwa-may ćarāćar zag pashyā

ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 16 पृ0 38

तुरि सलिल खोतय तुरे
हमि तुर गॅय ब्यन–अब्यन विमर्शा
चेतन नाए रवु बाति सर्व सोमि
शिवमय चराचर जग पश्य ।।

– लेखिका

जल, हिम और यख (ice) (जमा हुआ जल) देखा जाये तीनों मूलतः जल ही हैं। जल, यख और हिम परस्पर तीन भिन्न स्वरूप हैं। जल तरल है, बर्फ़ सघन है तथा यख़ ठोस । भीषण ठंड से जल जम कर यख़ बन जाता है और बहुत अधिक शीत से बर्फ़ गिर जाती है।

एक ही मूल तत्त्व के दो और भिन्न रूप।

जब बादल छंट कर सूर्योदय होता है तो यह यख़ और बर्फ़ दोनों पिघल कर जल के साथ सम हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही तत्त्व के तीन भिन्न रूप एकाकार हो जाते हैं। प्रकृति के इस यथार्थ को जीवन के सन्दर्भ में देखिये । परम सत्ता का विकास सृष्टि लीला के रूप में असंख्य रूप धारी प्रकृति और लीला समाप्ति पर समस्त भिन्न रूपात्मक तत्त्व मूल तत्त्व के साथ मिल कर सम हो जाते हैं। इसी प्रकार जब चेतना रूपी सूर्य का उदय होता है तो समस्त सृष्टि शिवाकार प्रतीत होती है।

जो भिन्न–भिन्न रूपधारी थे एकाकार होकर अभिन्न हो जाते हैं। लल कहती हैं कि सृष्टि विकास का यह रहस्य विचारणीय है।

'हमि त्रे गय' – क्या 'हमि' ? तुर शब्द का प्रयोग आवश्यक है। 'हमि त्रे गय' के बदले 'हमि तुर गय' होना चाहिए।

तृतीय पद में – चेतन रव बाति सर्व सॊमि' शुद्ध शब्द पाठ है। 'सब सॊमि' के बदले 'सर्व सॊमि' होना चाहिए। 'सब सॊमि' का प्रयोग अर्थ में बाधक है। चेतना रूपी रव जब भीतर प्रकाशित होती है तो मानस की विविधता समाप्त होकर सम हो जाती है। अन्तिम पद में अन्तिम शब्द भी विचारणीय है।

संस्कृत भाषा का शब्द है – पश्य (धातु – दृश्) देखना। 'पशा' का प्रयोग भी शुद्ध नहीं है यह 'पश्य; होना चाहिए ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ इस प्रकार निश्चत होता है :–

तुरि सलिल़ खॊतय तुरे
हमि तुर गॅय ब्यन–अब्यन विमर्शा
चुेतन नारु रवु बाति सर्व सॊमि
शिवमय चऱाचऱ ज़ग पश्य ।।

हिन्दी अनुवाद :–

शीत से सलिल अधिक ठंडा होकर ठोस बन जाता
ठंड जब कम हो जायेगी भिन्नत्व अभिन्नत्व में बदल
जायेगा, तनिक सोच
चेतना के प्रकाश से सब सम नज़र आये गा
चराचर जगत शिवमय दिखाई देगा ।

शब्दार्थ :–

सलिल – जल

अब्यन – अभिन्न
विमर्शः – विचार, विवेचन, शिव
चराचार – चर और अचर जगत
बाति – पूरी तरह नज़र में आना, स्पष्ट दिखाई देना
पश्य – मूल संस्कृत धातु दृश् (पश्य) – देखना
चेतन रव – चेतना रूपी रवि किरण, सूर्य (अतः प्रकाश एवं उष्णता
खोतय – ज़्यादा, अधिक

टिप्पणी :–

सम्पूर्ण सृष्टि शिव–लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जब चेतना की रव–रश्मियों का विस्तार होता है तो सृष्टि तीव्रगति से विकास की ओर अग्रसर होती है और जब नियंता अपनी–अपनी शक्ति समेट लेता है तो सम्पूर्ण सृष्टि उसी में लय होकर सम हो जाती है। यही रहस्य 'एक से अनेक और अनेक से एक' का है। यही मूलतः अद्वैतवादी चिन्तन है और कश्मीर शैव–दर्शन का मूलभूत आधार स्रोत ।

ooo

{ 37 }

ہچِوِ ہاَرِنجِہ پیٚژِوِ کان گوم
اَبکھ چھان پیوم یتھ راز دانے
منز باگ بازرس قُلفہ روس وان گوم
تیرتھ روس پان گوم کُس مالِ زانے

हचिवि हॉरिंजि प्यॅचि़व कान गोम
अबख छान प्योम यथ राज़दाने
मंज़ बाग बाज़रस कुल्फ़ु रोस वान गोम
तीर्थु रोस पान गोम कुस मालि ज़ाने ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल वाख 04, पृ0 64

हचिवि हारिंजि प्यॅचि़व कान गोम
अबख छान प्योम यथ राज़ुदाने।
मंज़बाग बाज़रस कुल्फु रोस्त वान गोम
तिर्थु–रोस्त पान गोम कुस मालि ज़ाने

The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 17, पृ0 38

हचिवि हांरिजि पेच़्युव कान गोम
अबोदि छ्यन प्योम यथ रासध्वन्ये।
मंज़ बाग बाज़रस कुल्फ़ु रोस वान गोम
तिथु रॉस्य प्राण गोम कुसु म्वल ज़ाने ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का द्वितीय पद विचारणीय है ।

'राज़दाने' – शब्द का प्रयोग किसी देश के मुख्यनगर, शासन केन्द्र अथवा राजधानी के लिये व्यवहार में लाया जाता है। परन्तु यह 'राज़दाने' शब्द नहीं है अपितु 'रास ध्वन्ये' शब्द है जिसका अर्थ है आनन्द ध्वनि, रस ध्वनि अथवा रास ध्वनि। 'रास' भी वास्तव में आत्म आनन्द का ही बोधक है।

रासध्वनि – अर्थात् परमतत्त्व रूपी आनन्द रहस्य । तलाश तो उसी की नित रहती है। लल्लेश्वरी ने सपष्ट कहा है कि 'गुरु ने कहा अनमोल वचन कि बाहर से भीतर प्रवेश कर ' । भीतर कोई रहस्य छिपा है उसे ढूँढ निकाल तभी परमानन्द की प्राप्ति होगी और ज्ञान ज्योति के प्रकाश से भीतर का तमसान्धकार लुप्त हो जायेगा ।

चतुर्थ पंक्ति का पहला शब्द **'तीर्थु रॊस'** है। शब्दार्थ तो बिल्कुल ठीक है लेकिन देखना यह है कि क्या इस प्रयोग से वाख के मूल अर्थ के साथ न्याय हो जाता है।

यह 'तीर्थु रॊस'– शब्द प्रयोग नहीं है अपितु शुद्ध शब्द प्रयोग है – ' तिथु रॉस्य' अर्थात् उस प्रकार व्यर्थ हो गया अथवा नष्ट हो गया, अदृश्य हो गया, ज़मीन के भीतर ही अदृश्य हो गया ।

वाख के अन्तिम पद में एक शब्द प्रयोग है ' कुस मालि ज़ाने' अर्थ – प्रिय ! कौन समझेगा, तथ्य को कौन पहचान सकेगा। 'मालि' शब्द का प्रयोग कश्मीरी में 'प्रियजन' प्रिय बन्धु के सन्दर्भ में होता है। यह वास्तव में प्रियजन के लिए सम्बोधन है। लेकिन यहाँ प्रयोग व्यर्थ है यह 'कुस मालि ज़ाने' के बदले 'कुसु म्वल ज़ाने' है जिसका अर्थ है कि कौन इसका मूल्य अथवा महत्त्व समझ सकता है।

प्रस्तुत वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत होगा –

हचिवि हांरिजि पॆच्युव कान गोम
अबॊदि छ्यन प्योम यथ रासध्वन्ये।
मंज़ बाग बाज़रस कुल्फ़ रॊस वान गोम
तिथु रॅस्य प्राण गोम कुसु म्वल ज़ाने ।।

हिन्दी अनुवाद :–

काष्ठ धनुष पर ताल–तृण का तीर मिला
अबोध से इस रासानन्द में विघ्न आया
बीच बाज़ार में कुफ्ल (ताला) रहित दुकान हो गया
इस प्रकार नष्ट हुआ शरीर, मूल्य कौन जाने ।।

शब्दार्थ :–

हारिंजि – तीर कमान, धनुष
प्यॅच़ – झीलों में उगने वाली एक घास जिससे चटाई (बिछावन) बनाई जाती है।
कान – तीर
अबॊदि – अकुशल बुद्धिहीन
रास ध्वनि – आनन्द ध्वनि, रसध्वनि, अथवा रासानन्द ध्वनि
तिथु – उसी प्रकार
रॅस्य – नष्ट, अदृश्य, भीतर ही भीतर अदृश्य हो जाना (जैसे रिसते बरतन का पानी)
म्वल – मूल्य ।

०००

{ 38 }

اَدیُستاری پوتھِن چھی ہو مالِہ پَران
یِتھ طوطہِ پَران "رام" پنجرس
پَر پَر کَران تَل دو مَندان
بڈیوکھ تِمنے اہمبھاو

अव्यस्तॉर्‌य पोथ्यन छी हों मालि परान,
यिथु तोतु परान 'राम' पंजरस ।
पर पर करान ज़ल दव मन्दान
बड्योख तिमनुय अहम् भाव ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 45, पृ० 112

अव्यचॉर्य पोथ्यन छि हो मालि परान,
यिथु तोतु परान राम पंजुरस
गीता परान तु हीथा लबान
परुम गीता तु परान छ्यस ।

' The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 191, पृ० 180

अव्यचॉर्‌य पोथ्यन छी हा मालि परान
यिथु तोतु परान 'राम' पंजुरस।
पर पर करान ज़ल द्यानि मन्दान
बड्योख तिमनुय अहंभाव ।।

गीता परान तु हीथा लबान
पॅरमु गीता तु पॉरान छस

— लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम·पद का प्रथम शब्द विचारणीय है –

यह शब्द 'अव्यस्तॉरी' नहीं है अपितु 'अव्यचॉरी' शब्द है जिसका अर्थ है अविवेकी, उचित–अनुचित का विचार न रखने वाला अथवा जिसमें विचार करने की शक्ति न हो, अज्ञानी आदि।

वाख के अन्तिम दो पदों के लिये दो पाठ उपलब्ध हैं :–

'पढ़ने का नाटक कर रहे हैं मानो (माखन की प्राप्ति के हेतु दूध नहीं जल मथ रहे हैं। इन दो पदों में एक शब्द प्रयोग 'ज़ल दव' के बदले जल् द्यानि (द्योन) होना चाहिए । मथनी के लिये कश्मीर में 'द्योन' शब्द का प्रयोग होता है।

लेकिन दूसरे पाठ :–

गीता परान त् हीथा लबान
पॅरुम गीता त परान छस ।

में अन्तिम पद में 'परान छस' शब्द प्रयोग विचारणीय है क्योंकि मात्र गीता पढ़ना ही पर्याप्त नहीं। गीता के सन्देशानुसार जीवन को कर्म साधना के पथ पर अग्रसर करना और संशय पर विवेक से विजय प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है।

अतः यह शब्द प्रयोग 'परान छा' नहीं है अपितु 'पॉरान छस' है। जैसे दुल्हिन का विधिवत श्रृंगार किया जाता है उसी प्रकार गीता ज्ञान से मैं अपने आपको सुसज्जित कर रही हूँ। गीता सन्देश का प्रकटन (प्रकट करना या होने की क्रिया) कर रही हूँ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

अव्यचॉर्‌य पोथ्यन छी हा मालि परान
यिथु तोतु परान 'राम' पंजुरस।
पर पर करान ज़ल द्योन (दयोन) मन्दान
बड्‌योख तिमनुय अहंभाव ।।
गीता परान तु हीथा लबान
पॅरुम गीता तु पॉरान छस

हिन्दी अनुवाद :–

अविचारी पढ़ रहे हैं पोथियों को
जैसे पिंजर बद्ध तोता रट रहा है 'राम राम'
निरत कर रहे हैं 'पठन, (मक्खन हेतु) मथ रहे हैं जल
वृद्धि होती उनमें अहंभाव की
गीता पढ़ रहे हैं और ढूँढ रहे हैं हेतु
पढ़ ली गीता और क्रियान्वित कर रही अपने आप पर। ।

शब्दार्थ :–

अव्यचॉरी – विवेकहीन, ना समझ, जिसमें विचार करने की शक्ति न हो ।
पोथी – पुस्तक, ग्रन्थ
ज़ल – नीर, पानी, जल (सं0)
पॉरान – सुसज्जित करना, शृंगार करना, प्रकटन
अहंभाव – गर्व, घमण्ड, अहम्मन्य, अहं तत्त्व ।

०००

{ 39 }

پۆت زوٗنہٕ وۆتھتھ موٗت بولہٕ نووُم
دگ للہٕ ناوُم دَیہِ سنٛزِ پرٛیے
لۆلہٕ لۆلہٕ کران لالہٕ وُزنووُم
میلِتھ تس من شرٛوچیوم دَہے

पोतॅ ज़ूनि वॊथिथ मोत बोलुनोवुम
दग ललॅनॉवुम दयि सुंज़ि प्रये
लॅल्य् लॅल्य् करान लालु वुज़नोवुम
मीलिथ तस मन श्रोच़्योम दहे ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 88, पृ0 162

पोत ज़ूनि वॅथिथ मोत बोलुनोवुम
दग ललुनॉवुम दयि सुंज़ि प्रहे
ललि–ललि करान लाल वुजुनोवुम
मीलिथ तस श्रोच़्योम दहे ।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 35, पृ0 81

पोत ज़ूनि वॅथित मन ब्वद नोवुम
दग ललु नॉवुम दयि सुँज़ि प्रेये ।
लोल लयु करान लाल वुज़ुनोवुम
मिलुविथ मनु प्राण श्रोच़्योम देह ।।

— लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद का अन्तिम शब्द विचारणीय है । वस्तुतः मन और बुद्धि के परस्पर सहयोग से चित्त अर्थात् चेतना की सार्थकता सिद्ध होती है। चित्त का जो विचार है या सोच है वही 'मत– कहलाता है। 'मोतॅ बोलनोवुम' अर्थात् मन मीत को बोलने के लिये, कुछ कहने के लिए विवश किया लेकिन यहाँ रात के पिछले पहर चन्द्रास्त (अमृत वेला) की बात कही गई है जो साधना के हेतु कुछ प्राप्ति के लिये उपयुक्त समय माना जाता है। यही वह समय है जब साधक अपने दृढ़ संकल्प से अपनी चेतना चेतन शक्ति को बल प्रदान करता है। उसे मन–मीत के बतियाने की चिन्ता नहीं वह तो आत्म–परिष्कार के पथ पर अग्रसर है।

अतः 'बोल् नोवुम' से अधिक उपयुक्त शब्द 'मन ब्वद नोवुम' मन और बुद्धि को स्वच्छ किया है। रात के पिछले पहर में चन्द्रास्त के समय अर्थात् अमृतवेला में जग कर ध्यानस्थ हुई और अपनी चेतना को स्थिरता की शक्ति प्रदान की ।

वाख के तृतीय पद में प्रथम शब्द प्रयोग बिल्कुल प्रक्षिप्त है। ' लॅल्य् लॅल्य् / ललि लॅलि करान' इस शब्द प्रयोग का क्या अर्थ है ? 'लॅलि लॅलि' शब्द का यदि कहीं कोई अर्थ है तो वह होगा – 'नखरे करते हुए' धीरे–धीरे, धीमी चाल से । वस्तुतः यह 'लोल लयि करान' शब्द प्रयोग है जिसका अर्थ है – प्रेम जताते हुए, बड़े चाव से, आकर्षण से प्रेरित होकर, मैंने आत्मदेव को लय अवस्था में अपना प्यार समर्पित करके जगाया ।

देह का प्रयोग केवल शरीर के सन्दर्भ में ही उचित है। इस शुद्ध प्रयोग का दस इन्द्रियां के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। 'देह' तथा 'दॅह' शब्दों के परस्पर कोइ अर्थसाम्य अथवा रूपसाम्य नहीं है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय होता है :–

पोत ज़ूनि वॅथित मन ब्वद नोवुम
दग ललु नॉवुम दयि सुँज़ि प्रेये ।
लोल लयु करान लाल वुज़ुनोवुम
मिलुविथ मनु प्राण श्रोच़्योम देह ।।

हिन्दी अनुवाद :–

अमृतवेला जगकर (मैंने) अपनी चेतना शक्ति को
बल प्रदान किया (मन और बुद्धि को स्वच्छ किया)
ईश प्रेमानुराग में पीड़ा सह ली
दुलार पूर्वक लाल (दुर) – स्रोत किया प्रवाहित
मनसः मिल कर उसे, देह हुआ पवित्र ।।

शब्दार्थ :–

पोत ज़ूनि – रात के पिछले पहर, चन्द्रास्त वेला में, अमृत वेला
प्रेये – आकर्षण अथवा अनुराग में
लोल लयु करान – लय अवस्था में अपना प्यार समर्पित करना ।
लाल वुज़नोवम– लाल स्रोत को किया प्रवाहित
श्रोच़्योम – पवित्र हुआ, विशुद्ध हुआ
देह – शरीर (संस्कृत – देह) शरीर, तन, जीवन, ज़िन्दगी ।

ooo

{ 40 }

یہِ کیاہ آسِتھ یہِ کیُتھ رنگ گوم
چنگ گوم ژٹِتھ ہُد ہُدنے دگےٚ
سارِنے پدن کُنے وکھُن گوم
للِ مےٚ تراگ گوم لگ کمِ شاٹھے

यि क्या ऑसिथ यि क्युथ रंग गोम
चंग गोम च़ॅटिथ हुद हुद ने दगे
सारिनुय पदन कुनुय वखुन गोम
ललि मे त्राग गोम लगु कॅमि शाठय ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 160, पृ0 257

yih kyāh ösith yih kyuth^{u} rang gōm
cang gōm ćaṭith huda-hudanĭy dagay
sārĕniy padan kunuy wakhun pyōm
Lali mĕ trāg gōm laga kami shāṭkay

ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 84 पृ0 98

यि क्या ऑसिथ यि क्युथ रंग गोम
चंग गोम च़ॅटिथ हुदहुद ने दिगय
सारिनय पदन कुनुय वखुन प्योम
ललि म्यॅ त्राग गोम लग कमि शाठय ।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 18, पृ0 39

यि क्या ऑसिथ यि कॅयुथ रंग गोम
चंग गोम चॅटिथ हुतु हुतुनि दगे ।
सारिनुय पदन कुनुय वखुन गोम
लल मे त्राग गोम लगु कमि शाठय ।।

– बिमला रैणा

कई विद्वान इस वाख का कोई भी अर्थ नहीं दे पाये हैं। उन्होंने लिखित रूप में अपनी असमर्थता को स्वीकारा है।

वाख का द्वितीय पद तनिक विचारणीय है। इस पद में 'हुद हुद ' का प्रयोग सार्थक नहीं है अपितु हृदय की तेज़ धड़कन के आभास 'हुतु हुत' का प्रयोग सार्थक है। उसी प्रकार चंग वाद्य की तान (अनहद संगीत) ने मेरे हृदय के मोहावरण को भेद डाला।

यह 'हुद हुद ने दिगय' नहीं है अपितु ' हुतहुतुनि दगे' है। ' हुत हुत' शब्द का एक ओर अर्थ है – परेशानी के समय तेज़ धड़कते हृदय की धड़कनों से उत्पन्न शारीरिक कम्पन (अद्‌भुत संगीत–ध्वनि) में व्यथित हृदय की धड़कनें घुम हो गईं । तन्त्र शास्त्र में 'ओम्‌कार' शब्द कई ध्वनि तत्त्वों में विभक्त हुआ है। जब समस्त स्वर एकत्र हो जाते हैं तो 'ओम्' का रूप धारण करते हैं और उस स्थिति में एक व्यक्ति के हृदय की धड़कनों का कोई महत्त्व नही रहता ।

यहाँ 'वखुन' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में हुआ है। 'वखुन' 'वखनय' के सन्दर्भ में जैसे वनवुन में किसी पात्र विशेष के सन्दर्भ में 'वखनय' विस्तार पूर्वक वर्णन होता है।

'ललि म्यॅ त्राग गोम' बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग है। यह 'ललि' शब्द नहीं है अपितु 'लल' शब्द है।

'लल' – ललद्यद के अर्थ में व्यवहार में लाया गया है। ललाट अर्थात् जहाँ शिवशक्ति अर्द्धनारीश्वर रूप में स्थित है।

'त्राग' – सं0 तटाक – (ताल) – तड़ाग (तालाब, सरोवर), ताल, गड्डा । कश्म0 – त्राग । यहाँ 'त्राग' का प्रयोग गहरे खड्ड के अर्थ में किया गया है। इसे गहरा सुराख (छेद) भी कहा जा सकता है।

'लल त्राग गोम' वस्तुतः ब्रह्मरन्ध्र के खुलने की अवस्था की ओर संकेत है। शरीर में नौ द्वार नहीं बल्कि दस द्वार हैं और दसवें द्वार को 'ब्रह्मरन्ध्र' कहते हैं जो ललाट में स्थित है। नौ द्वार खुले रहते हैं और दसवां बन्द रहता है जब यह खुल जाता है तो जन्म सफल हो जाता है।

कुण्डलिनी जागरण और हठ–योग साधना में 'ब्रह्मरन्ध्र' की महत्ता पर विस्तार से विचार किया गया है।

'शाठन लगुन' संकट में फंस जाना, मुसीबत से घिरना, मार्ग अवरुद्ध होना।

ब्रह्मरन्ध्र के खुल जाने पर अर्थात् ललाट का मार्ग खुल जाने पर सहस्रार में प्रवेश सहज, सरल और निर्बाध है। उस स्थिति में कोई मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकता अतः संकट में फंस जाने पर प्रश्न ही नहीं रहता। कोई दिव्य पथ को अवरुद्ध नहीं कर सकता ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता हैः–

यि क्या ऑसिथ यि क्युथ रंग गोम
चंग गोम चॅटिथ हुतु हुतुनि दगे ।
सारिनुय पदन कुनुय वखुन गोम
लल मे त्राग गोम लगु कमि शाठय ।।

सूक्ष्म हृदय पंकज
सदाशिव
सर्वानुग्रहाधिकारी
आज्ञा
पिंगला
सुषुम्ना
इड़ा
निरोधनाधिकारी
विशुद्धि
महेश्वर
मनश्चक्र
हृद्चक्र
योगाधिकारी
अनाहत
रुद्र
रक्षणाधिकारी
मणिपुर
विष्णु
सृष्ट्याधिकारी
स्वाधिष्ठान
ब्रह्मा
मूलाधिकारी
मूलाधार
गणेश
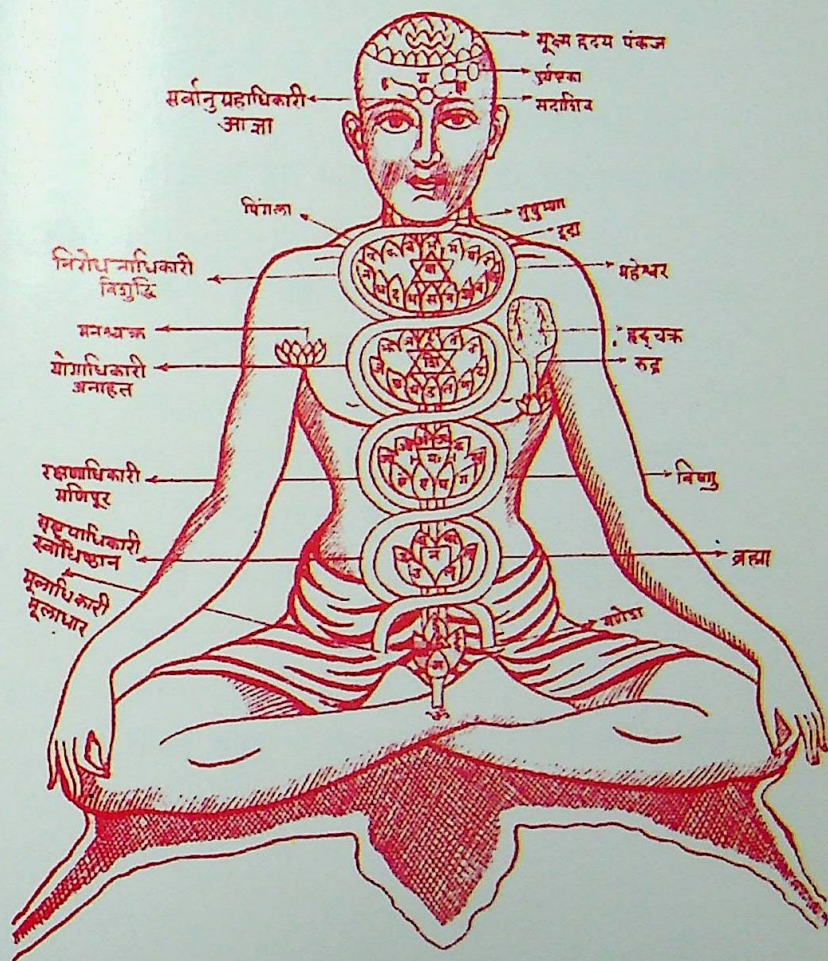
षट्चक्र

हिन्दी अनुवाद :–

क्या थी और यह कैसा (अद्भुत) रूप प्राप्त किया
चंग (वाद्य) के अनहत संगीत की तान ने मेरे हृदय की
पीड़ा (सांसारिक) कम्पन को समाप्त कर दिया
समस्त पदों का नाद सम हो गया (ओंकार की
ध्वनि में परिवर्तित हुआ)
ललाट से खुल गया मार्ग कौन कर सकता अवरुद्ध इसे।

शब्दार्थ :–

चंग – एक वाद्य यन्त्र, सितार के प्रकार का एक बाजा
हुत हुतनि – हृदय की तेज़ भागती धड़कनें
दग – पीड़ा
पद – तन्त्रशास्त्र में योगाभ्यास की सात अवस्थाएँ,
(ओम्कार के विभिन्न पद)
वखुन – 'वखनय' विस्तार पूर्वक वर्णन, सम स्वर में आ जाना
लल – ललाट
त्राग – सुराख़, छिद्र, गड्डा
शाठन लगुन – संकट में पड़ना, मुसीबत में पड़ जाना ।

ooo

{ 41 }

شونیہک مادان کوڈم پانس
مے للہ روزم نہ بود نہ ہوش
ویزے سپنس پانے پانس
اد کمہ گلہ پھول للہ پمپوش

शुन्यहुक मॉदान कोदुम पानस्
मे ललि रूज़ुम नु ब्वद नु होश
वेज़यु सपनिस पानय पानस
अदु कमि गिलि फोल ललि पम्पोश ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल वाख 103, पृ0 182

शून्युक मॉदान कोडुम पानस
म्यॅ ललि रूज़ुम न ब्वद न होश
व्यज़य सपुनिस पानय पानस
अद कमि हिलि फोल ललि पम्पोश ।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 100, पृ0 194

समन्य महादहन कोरुम पानस
मे ललि रूज़ुम नु ब्वद नु होश।
वेज़ुय सपनिस पानय पानस
अदु तमि गाहलि फोल्य् ललि पम्पोश ।।

– लेखिका

समन्य – योग साधना में दो अवस्थाओं को विशेष उल्लेख है – समन्य तथा उन्मन्य।

शक्ति चक्र एवं व्यापिका चक्र के पश्चात् समन्य अवस्था का उल्लेख होता है । षष्ठ चक्र तथा सप्त चक्र के मध्य आज्ञाचक्र और सहस्रार के मध्य इन अवस्थाओं का उल्लेख किया जाता है।

समन्य अवस्था के बाद उन्मन्यावस्था आती है। जिसका प्रयोग ललद्यद ने किया है।

अतः लल्लेश्वरी इस वाख के प्रथम पद में कहती है कि समन्य कोष में महादहन (ज्वलन अग्नि) करने के बाद मुझे सुधबुध नहीं रही।

इस पद में 'शुन्युक' शब्द–प्रयोग शुद्ध नहीं है अपितु यह 'समन्य' शब्द होना चाहिए जो योग की एक विशिष्टावस्था का बोधक है।

सोम, सूर्य, अग्नि इन तीनों का एकत्रित वास समन्य कोश में होने के कारण लल 'समन्य महादहन कोरुम पानस' का प्रयोग करती है।

प्रस्तुत वाख के चतुर्थ पद में 'अद् कमिगिलि' का प्रयोग विचारणीय है। 'गिल' शब्द के कई अर्थ हैं – मिट्‌टी, कीच, एक जल पक्षी आदि पौ फटते ही पद्‌म मुस्करा उठता है। यह हमारा अनुभव है। डल–झील में प्रातः सैर पर जाते समय प्रथम सूर्य रश्मियों के स्पर्श से कँवल पंखुरियाँ खोल कर दिव्य प्रकाश का स्वागत करते हैं।

देखना यह है कि इस शब्द का प्रकाश से कहीं न कहीं सम्बन्ध होना चाहिए। मिट्टी और कीच के अर्थ से सम्पूर्ण वाख के साथ तारतम्य नहीं बैठता। कश्मीरी भाषा में एक शब्द है – गाह (चमक, प्रकाश, रोशनी आदि) इसी 'गाह' से शब्द बना है – 'गाहलि' (रोशनी से, प्रकाश से)।

अतः प्रस्तुत वाख के चतुर्थ पद में 'गिलि' शब्द का प्रयोग

असंगत है यह गाहलि' शब्द होना चाहिए। 'तब किस प्रकाश से अर्थात् अद्‌भुत दिव्य रोशनी से लल्लेश्वरी का आन्तरिक कमल खिल उठे ।' गाहलि शब्द का प्रयोग ज्ञान और बोध के लिये भी हो सकता है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है–

समन्यु महादहन कोरुम पानस
मे ललि रूज़ुम न ब्दद नु होश।
वेज़ुय सपनिस पानय पानस
अदु तमि गाहलि फोल्य् ललि पम्पोश ।।

हिन्दी रूपान्तर :

समन्य कोश में मैं ने महादहन किया
मुझ लला को सुध बुध न रही
मैं स्वयं अपने आप से परिचित हुई
हुआ आत्मबोध।
अद्‌भुत प्रकाश से लला के आन्तरिक कमल खिल उठे।

शब्दार्थ :–

वेज़ – परिचित

गाहलि – प्रकाश, रोशनी, ज्ञान, बोध

समन्य – यह वस्तुतः योगशास्त्र में षष्ठ चक्र एवं सहस्रार के मध्य विभिन्न अवस्थाओं में एक अवस्था का बोधक है।

ललि–पम्पोश – ललाट के भीतर पद्‌म का विकसित होना।

विशेष टिप्पणी :–

इस आज्ञाचक्र के समीप कारण शरीर–रूप सप्त कोश हैं। इन कोशों के नाम इस प्रकार हैं :–

1. इन्दु; 2. बोधिनी ; 3. नाद;

4. अर्द्धचन्द्रिका; 5. महानाद

6. कला, सोम–सूर्य, अग्नि रूपिणी, सुमनी या समनी

7. उन्मनी

इस सोम–सूर्य–अग्नि रूपिणी समनी कोष से निकल कर इस उन्मनी कोश में पहुँचने पर जीव की पुनर् आवृत्ति नहीं होती अर्थात् पराधीन सम्भवत्त्व नष्ट हो जाता है। स्वाधीन सम्भव में अर्थात् स्वेच्छा या परमेश्वरी इच्छा से देह धारण करने में आत्म स्वरूप की पूर्ण स्मृति बनी रहती है । इस कोश के ऊपर सहस्नार के नीचे बारह दलों का एक अधोमुख कमल है। इसके नीचे के कमल भी अधोमुख होते हैं।

कुण्डलिनि उत्थान जब होता है तभी यह सब कमल ऊर्ध्वोन्मुख होकर प्रकाशमय होते हैं। इस टिप्पणी के साथ लल्लेश्वरी के इस वाख के निम्नलिखित पद पर विचार किया जा सकता है ।

' अदु तमि गाहलि फॊल्य ललि पम्पोश '

ooo

{42}

ہہہٕ نِشہِ ہا دڑاو شاہ کیاہ گوو
ہہسٕ تہٕ ہاہس شاہ ژےٚ زان
رۄہ نِشہِ مۄر دڑاو کیاہ وُچھے
کیاہ رۄد یاتے کیا گوو فان

हह निशि हा द्राव शाह क्याह ग्व
हहस तु हाहस शाह चुय ज़ान
रूहु निशि मोर द्राव क्याह वुछुय
क्याह रूद बाकुय क्या ग्वव फान ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 208, पृ0 283

हहॅ निश हाह द्राव शाह क्याह गव
हुहस तु हाहस शाह चुय ज़ान
मरि निशि रूह द्राव क्या वुछुय
क्याह रूद बाकुय क्याह गव वुफान ।

— लेखिका

प्रस्तुत वाख मूलतः योग साधना की प्राणायाम क्रिया से सम्बन्धित है। योग के आठ अंगों में प्राणायाम का अपना विशेष महत्त्व है।

इस वाख के तृतीय और चतुर्थ पद में पाठ विकार हो चुका है। 'रूहि निशि मोर द्राव' अर्थात् आत्मा से देह निकली । वास्तव में स्थिति ठीक इसके विपरीत है। आत्मा से देह नहीं निकलती, वरन् देह से आत्मा

निकल जाती है और शरीर जड़ हो जाता है। अतः 'रूहि निशि मोर द्राव' के बदले यह 'मोरि निश रूह द्राव' होना चाहिए तब अर्थ के साथ न्याय हो जाता है।

चतुर्थ पद में 'फ़ान' (अरबी – नाश), तबाही, विनाश शब्द का प्रयोग भी संदेहास्पद है। रूह (आत्मा) का विनाश नहीं होता वह तो अनश्वर एवं शाश्वत है। वस्तुतः यह 'फान' के बदले 'वुफान' शब्द है जिसका अर्थ है उड़ के अदृश्य होना ।

(प्राणायाम क्रिया में पूरक, कुम्भक एवं रेचक की तीन महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ हैं। श्वास का भीतर खींचना (प्रश्वास) पूरक ही स्थिति है। भीतर श्वास अवरोध कुम्भक तथा रुकी हुई वायु (निश्वास) का निःसरण रेचक। इस लिये प्रश्वास और निश्वास कीं क्रिया के साथ जो अनवरत चलती रही है, इस योगाभ्यास का सम्बन्ध है। 'हह' प्रश्वास का बोधक है तथा 'हाह' निश्वास क्रिया का है। इस 'हह' तथा 'हाह' अर्थात् श्वास आगमन और श्वास निर्गमन की दो भिन्न अवस्थाओं के आधार पर प्रस्तुत वाख ने आकार ग्रहण किया है।)

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार से नियत हो जाता है–

हहॅ निश हाह द्राव शाह क्याह गव
हुहस तु हाहस शाह चुय ज़ान
मरि निशि रूह द्राव क्या वुछुय
क्याह रूद बाकुय क्याह गव वुफान ।

हिन्दी अनुवाद :–

प्रश्वास निश्वास बनकर निकला, श्वास क्या होता है (यह
तो मूलतः श्वास का आगमन और निर्गमन है)
प्रश्वास और निश्वास को श्वास गति समझ ले

देह से आत्मा का निःसरण हुआ, दिखने में क्या आया
शेष क्या रहा और उड़ के अदृश्य क्या हुआ ।

शब्दार्थ :–

हहँ– श्वास को भीतर खीचना, श्वासाकर्षण, फेफड़ों को शुद्ध वायु से भर लेना, प्रश्वास क्रिया

हाह – भीतर के वायु को बाहर छोड़ना, फेफड़ों में भरे हुए वायु को धीरे धीरे बाहर छोड़ना, निःश्वास क्रिया ।

मॊर – निवास, आधार, घर, देह, शरीर, काया

रूह – आत्मा, प्राण तत्त्व, जान, सत

वुफान – उड़ के चला जाना ।

०००

{ 43 }

گال گنڈِنم بول پڈِنم
دپِنم تی یَس یہ رۄچے
سہز کُسمو پوٗز کرِنم
بو اَمرِلاٰۓ تہٕ کس کیاہ مۄچے

गाल गॅण्डिन्य्म बोल पॉडिन्य्म
दपिन्यम ती यस यि रूचे़
सहज़ कुसमव पूज़ कॅरिन्य्म्
बॊ अम्लॉन्य तु कस क्या म्वचे़।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 38, पृ0 102

गाल् ।। गण्ड़ेनिम् ।। मुल् ।। पेळनिं ।
दपेनिं यसफ ये रुच्चि ।।
सहज़ कुसुम पूज करनिं
भु अमलान्योत कस् ।। क्या मुच्ची ।।

–'ललवाक्याणि' ग्रियर्सन वाख 26, पृ0 42 स्टेन–बी0

गाल गॅन्डिन्यम तु बोल पॅडिन्यम
दॅपिन्यम तिय यस यि रोचे़।।
सहज़ु क्वसमौ पूज़ कॅरिन्यम
बोह अमुलॉञ तु कस क्याह म्वचे़ ।।

The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 7, पृ0 15

गलि गॅन्डिन्युम बोल पॅडिन्य़्म
दॅपिन्युम ती यस यि रोचे़
सु ज़ि कोसमव पूज़ करिन्य़्म
बॊ अमलिन्यु तु कस क्या म्वचे़ ।।

— लेखिका

'गाल गण्डिन्यम' शब्द खण्ड का प्रयोग प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में किया गया है। 'गाल गण्डिन्यम' शब्द का अर्थ क्या है ?

कश्मीरी – –गाल' (गाली), अपशब्द, अश्लील शब्द

हिन्दी – गाल – (कपोल, रुखसार)

किसी भी अर्थ में इस शब्द को ले लीजिये अर्थ कहीं स्पष्ट होता नहीं। अर्थ खींच कर निकालना एक बात है और अर्थ का स्वतः प्रवाह दूसरी बात है।

'गाल' शब्द के आगे 'गण्डिन्यम' शब्द है जिसका अर्थ है बान्धना। आप स्वयं देखिए कि दोनों शब्दों में कहीं परस्पर अर्थ सम्बन्ध है ?

यह वास्तव में 'गाल गण्डिन्यम' शब्द प्रयोग नहीं है अपितु 'गलि–गण्डिन्यम' शब्द प्रयोग है जिसका अर्थ है – चाहे गले से बान्ध लें।

वाख का तीसरा पद देखिए –

सहज़ कुसमो पूज़ करिन्य़् '

'सहज़ कुसुम' का अर्थ क्या है ? कुसुम सहज नहीं होते, बुद्धि सहज होती है, विचार सहज होता है, अनुभूति सहज होती है, अभिव्यक्ति सहज होती है और 'सॅहज़' शब्द का प्रयोग अध्यात्म के सदर्भ में होता है। कुसुम के साथ 'सहज़' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं होता है।

वस्तुतः वाख के इस पद में यह 'सहज़' शब्द नहीं है अपितु

'सुज़ि' शब्द है। एक कश्मीरी शब्द प्रयोग देखिये –

" सु हिज़ छु यी वनान "

'सुज़ि ' – अर्थात् जिस की ओर इशारा (संकेत) किया जाये आँखों से दूर कोई भी व्यक्ति 'सु' है। 'ज़ि' प्रत्यय के रूप में साथ लग कर 'सुज़ि ' शब्द का निर्माण होता है जिसका अर्थ है – वह भी, वह चाहे, वह यदि, वह अगर आदि ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है–

गलि गॅन्डिन्युम बोल पॅडिन्य्म
दॅपिन्युम ती यस यि रोचे़
सु ज़ि कोसमव पूज़ करिन्य्म
बॊ अमलिन्यु तु कस क्या म्वचे़ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

चाहे गले से बान्धे ले, जो चाहे सो कहे
वही कहे, जो उसकी इच्छानुकूल हो
वह यदि पुष्पार्चन भी करे
मैं अ+मलिन हूँ तो किस में क्या शेष रहेगा
(अर्थात् किसे क्या शेष रहेगा) ।

शब्दार्थ :–

गलि – गले से
गॅन्डिन्यम/पडिन्यम – कश्मीरी के दक्षिणी भू–भाग में बोली गत उच्चारण
सु – ज़ि – वह यदि, अगर वह
अमलिन्य् – अ + मलिन अर्थात् निर्मल, स्वच्छ
म्वचे़ – शेष रहेगा ।

ooo

لیکہٕ تہٕ تھوکہٕ پیٹھ شیرِ ہیٚژم
نیندا سپنِم پتھ بروٚنٹھ تانۍ
لَل چھَس کل زانہہ نو ژھیٚنِم
اَدِ یٚلِ سپنِس ویٚپہے کیاہ

ल्यकु तु थ्वकु प्यठ शेरि ह्यचम़
न्यन्दा सपनिम पथ–ब्रोंठ तान्य
लल छस कल ज़ाँह नो छेनिम
अदु यॅलि सपनिस वेपिहे क्याह।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 143 पृ0 234

लूकु थ्वकु प्यठ शेरि ह्यचम़
न्यन्दा सपनिम पथ ब्रोंठ तान्य्
'लल' छस कल ज़ांह नो छेनिम
अद्वय सपनिस वेपि हे क्या ।।

– लेखिका

'ल्यकु– शब्द सन्देहास्पद है। लल्लेश्वरी के युग में इस प्रकार का भाषा प्रयोग प्रचलित नहीं था। यह वास्तव में 'लूकु–थ्वकु' शब्द खण्ड का प्रयोग है जो वाख के सम्पूर्ण प्रतिपाद्य के साथ सार्थक सिद्ध होता है।

प्रस्तुत वाख के चतुर्थ पद 'अद यलि सपनिस वेपिहे क्या' में प्रस्तुत तीन शब्द विचारणीय हैं :–

'अद यलि सपनिस' – तब जब मैं हो गई । लेकिन प्रश्न उठता हें कि 'क्या हो गई ' ? वाख के प्रथम तीन पदों में जीव स्वार्थमय जीवन के भौतिक व्यवहार की बात करता है। सीमाओं में बन्ध कर जीव केवल अपने दुख सुख तक सीमित रह जाता है। दुख निवारण और सुख प्राप्ति के हेतु वह अपने नीति कुशल व्यवहार से किसी को भी ठग लेता है और अन्त तक पहुँचते पहुँचते उसे महसूस हो जाता है कि छल कपट के इस व्यवहार में कुछ हासिल नहीं होता । 'अद यलि स्पनिस' के स्थान पर ' अद्वय स्पनिस' शब्द का प्रयोग सार्थक है। द्वैत के अभाव को 'अद्वय' कहते हैं। लल कहती है कि जब मैं शेष सृष्टि के साथ एक हो गई, जब आत्मा का परमात्मा में विलय हुआ, जब दो से एक होने की अवस्था प्राप्त हुई फिर काहे का भय और काहे की चिन्ता।

अतः वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है–

लूक़्–थ्वक़् प्यठ शेरि ह्यच़म
न्यन्दा सपनिम पथ ब्रोंठ तान्य्
'लल' छस कल ज़ांह नो छ़ेनिम
अद्वय सपनिस वॆपि हे क्या ।।

हिन्दी अनुवाद :–

लोक तिरस्कार अपने ऊपर लिया
भर पूर निन्दा हुई आगे से पीछे तक
'लल' हूँ ध्यानमग्न निर्विकर चित्त
अद्वय हुई क्या समा जाता भीतर ।

शब्दार्थ :–

अद्वय – द्वैत का अभाव (बूँद का सागर में मिलन)

व्यपुन – भीतर जाना, समाना

कल – ध्यान, इच्छा, ख्याल विश्वास, नीयत

न्यन्दा – मूल शब्द – निन्दा (बदनामी, झूठा आरोप)

०००

{ 45 }

ہیتھ کٔرِتھ راج پھیرِنا

دِتھ کٔرِتھ ترٛپتی نا مَن

لوٗب وِنا زیوٗ مَرِنا

زیوٗنت مَرِتاے سُے چھُے گیان

ह्यथ कॅरिथ राज फेरिना

दिथ कॅरिथ तृप्ति ना मन

लूब व्यना ज़ीव मरि ना

ज़ीवन्त मरि तॉय सुई छुय ग्यान

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 48 पृ0 116

हिता कर्ता राज्य् फरि ना

देता कर्ता नृपि ना मन् ।

विद् लोभा ज़ूव् मरिना

जूवन्तोय् मरि ता सोये ज्ञानी ।।

–'ललवाक्याणि' – स्टीन–बी, ग्रियर्सन ' वाख 27 पृ0 34

ह्यथ कॅरिथ राजफेरिना

दिथ कॅरिथ त्रप्ति ना मन।

लूब बिना ज़ीव मरिना

जीवन्तुय मरि तय सुय छुय ज्ञान ।।

The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 86, पृ0 171

यिहातु कॅरिथ राजु फरि यीना
द्युत कॅस्य कॅस्य तृपति ना मन
लूब ब्यना ज़ीव मरि ना
जीवन्तु मरि तय सुय छु ज्ञान ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद के प्रथम दो शब्द ' हय्थ करिथ' विचारणीय है। इन शब्दों का अर्थ क्या है ? ' ले देकर' अथवा मोल लेकर, यदि यह अर्थ लिया जाये तो वाख के साथ अर्थ का तारतम्य ही नहीं बैठता ।

इसी प्रकार इस पद के अन्तिम शब्द को देखिए :–

' फेरिना ' – (बदल जाता) एक बार फिर, वही स्थिति उत्पन्न होती है जो प्रथम दो शब्द लेकर सामने आई है।

मूलतः पद का पाठ ही विकृत है, अर्थ का विकृत हो जाना स्वाभाविक है।

'ह्यथ करिथ' के बदले पाठ होना चाहिए – 'यिहातु करिथ' (ऐशो इशरत करके, सुख भोग कर)

'फेरिना' – के बदले फरि यीना' (दिल भरेगा नहीं)

वाख का दूसरा पद देखिये – 'दिथ करिथ' (देकर) प्रयोग उचित नहीं है । दिथ करिथ के बदले यह होना चाहिए – 'द्युत कॅस्य कॅस्य' (बार–बार देकर)।

'द्युत ' – एक बार देना।

'द्युत कॅस्य कॅस्य' – बार बार देकर ।

वाख के चतुर्थ पद प्रथम शब्द 'ज़ीवन्त ' वास्तव में जीवन्त शब्द है और पद में प्रयोग जीवन्त अर्थात् जीते जी ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

यिहातु कॅरिथ राजु फरि यीना
द्युत कॅर्‌य कॅर्‌य तृपति ना मन
लूबु ब्यना ज़ीव मरि ना
जीवन्तु मरि तय सुय छु ज्ञान ।।

हिन्दी अनुवाद :–

ख़ूब सुख भोग कर मन भरता नहीं (मन रूपी राजा
तृप्त नहीं होता)
बार बार देकर भी मन तृप्त नहीं होगा
लोभ के बिना जीव मरेगा नहीं
(जब) जीते जी मर जायेगा तो वही ज्ञान है ।

शब्दार्थ :–

यिहात कॅरिथ – सुख सम्पदा भोग कर, ख़ूब ऐशो इशरत (सुख चैन)
फरि यी ना – दिल नहीं भरेगा, ऊभ नहीं जायेगा
राजु – राजा, प्रमुख अधिकारी
द्युत कॅर्‌य–कॅर्‌य – बार बार देकर
जीवन्त – जीते जी (जीवित अवस्था में)

ooo

کھیتھ گنڈِتھ شیمہ نا مانس
براںتھ یمو تراوِتے گیے کھٔسِتھ
شاستر بۆزِتھ چھُ یمہ بیہ کرور
سُہ نا پۆز تہ ڈٔنی لٔسِتھ

ख्यथ गंड़िथ श्यमि ना मानस
ब्रांथ यिमव त्रॉव तिमय गॅयि खॅसिथ
शास्त्र बूज़िथ छु यमु भयु क्रूर
सु ना पोज़ तु दॅनी लॅसिथ ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 30 पृ0 94

खिना गण्डना निशा मन् । दूरो ।।
भ्रान्त येमु त्रावू तीमे मे खस्ती ।।
शास्त्र् ।। भूजीत् ।। छ्यो यमभट्ट।। क्रूरो
सहो ना पचो ता दन्या लस्ती ।।

–'ललवाक्याणि' – स्टीन–बी, ग्रियर्सन –' वाख 08 पृ0 49

ख्य्न गॅन्डिथ शेमि ना मानस
ब्रांत्य यिमव त्रॉव्य् तिमय गॅयि खॅसिथ
शास्त्र बूज़िथ छु यमु–बय क्रूर
सु ना पोज़ तु दनी लॅसिथ ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद का प्रथम शब्द ही विचारणीय है। यह शब्द 'ख्यथ्' नहीं हो सकता। 'ख्यथ' एक भूतकालिक क्रियावाचक शब्द है – (अर्थ) खा कर या खाने के बाद और इस अर्थ से पद का अर्थ विकृत हो जाता है।

यह वास्त में 'ख्यन' शब्द है। 'ख्यन' अर्थात् आहार, भोज्य, खाद्य पदार्थ ।

लल्लेश्वरी कहना चाहती है कि केवल अपने भोज्य को नियंत्रित करने से मानस शान्त नहीं होता। मानसिक शान्ति के लिये कुछ और करने की आवश्यकता है।

वाख के द्वितीय पद का प्रथम शब्द भी पाठ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है।

'ब्रान्थ' – शब्द आशा, उम्मीद, सम्भावना के लिय प्रयोग में लाया जाता है। 'ब्रान्थ त्रावुन' का अर्थ है – उम्मीद छोड़ना, कोई आशा न रखना, हार मानना, निराश होना आदि। इस अर्थ के आधार पर तो पूरे पद के अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यह वास्तव में 'ब्रान्थ' शब्द नहीं है अपितु 'ब्राँत्य' शब्द है जिसका मूल शब्द है 'ब्रोंथ' अर्थात् भ्रान्ति, एक के बदले दूसरे का भ्रम, अयथार्थ ज्ञान, भ्रमयुक्त ज्ञान, मिथ्या ज्ञान। लल्लेश्वरी स्पष्ट शब्दों में कहती है कि जिन्होंने मिथ्या ज्ञान को अर्थात् भ्रम–युक्त ज्ञान को छोड़ा वहीं भवसागर के पार उतर गये।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

ख्य्न गॅन्डिथ शॅमि ना मानस
ब्रांत्य् यिमव त्रॉव्य् तिमय गॅयि खॅसिथ
शास्त्र बूज़िथ छु यमु–बय क्रूर
सु ना पोज़ तु दनी लॅसिथ ।।

हिन्दी अनुवाद :-

आहार–नियंत्रण से ही मन शान्त नहीं होता
जिन्होंने त्यागा मिथ्या ज्ञान वहीं पार उतर गये
शास्त्र पढ़ कर यम–भय क्रूर हो जाता है
जिसने भ्रम को सच नहीं माना, वही धनवान,
वही जीवित।।

शब्दार्थ :-

ख्यन् – आहार, भोज्य, खाद्य पदार्थ, भौतिक सुख सुविधा आदि

शेमि – शमन, शान्त होना

ब्राँत्य – भ्रान्ति, भ्रंम, मिथ्या ज्ञान

दॅनी – धनवान

लॅसिथ – जीवित ।

०००

{ 47 }

اومُے اکُے اکھشرٕ پۆرُم
سُے مالِ رۆٹُم وونُدس منز
سُے مالِ کنہٕ پیٹھ گۆرُم تہٕ ژۆرُم
آیسس ساس تہٕ سپنِس سوَن

ओमुय अकुय अक्षर पोरुम
सुय मालि रोटुॅम व्वन्दस मंज़
सुई मालि कनि प्यठ गोरुॅम तु चोरुम
ऑसुस सास त स्पनिस स्वन ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 183 पृ0 269

ओमुय अकुय अछुर पोरुम
सुय मालि रोटुम व्वंदस मंज़
सुय मालि कोन्य् प्यठ गोरूम तु व्यचोरुम
ऑसुस सास तु सपनिस स्वन ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का तृतीय पद पाठ शुद्धि की दृष्टि से विचारणीय है ।

'सुई मालि कनि प्यठ गोरुम त चोरुम' अर्थात् उसे ही मैंने पत्थर पर तराशा और आकार प्रदान किया। लगता है कि वाख के मूल कथ्य से यह जुड़ा नहीं है।

प्रस्तुत वाख वास्तव में योग साधना की भीतरी गहनानुभूति से सम्बन्धित है। अनाहत नाद कुंडलिनी योग के चतुर्थ चक्र की विशिष्ट दिव्यानुभूति है और उसी अवस्था पर साधक के मानस में अद्‌भुत ओम नाद स्वयमेव सुनाई देता है। उसी दिव्यानन्द को अपने मानस के भीतर केन्द्रित करके योग साधक आज्ञा–चक्र में प्रवेश करने का प्रयास करता है।

योग के आधार पर भीतरी विशिष्ट ध्यान–बिन्दु जहाँ समस्त इन्द्रियाँ (कुल दस – पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ + पाँच कर्मेन्द्रियाँ) तथा मन को समावस्था में लाकर केन्द्रित किया जाता है, 'कॊन्य' कहलाता है ।

'कॊन्य' का अर्थ है – ग्यारह का सम बिन्दु पर केन्द्रित होना अथवा स्थिर होना । उसी केन्द्र बिन्दु पर ओ३म् नाद को मैंने बहुत चाहा और विचारा ।

प्रस्तुत पद का अन्तिम शब्द 'चॊरुम' दिया गया है जो वास्तव में 'व्यचो़रुम' शब्द होना चाहिए जिसका अर्थ है विचार किया, विचारना, ढूँढना, गौर करना आदि ।

सम्पूर्ण वाख का केन्द्र बिन्दु वास्तव में कॊन्य शब्द है और उसी शब्द को विकृत करके 'कनि' (पत्थर) बना दिया गयां है।

वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार स्थिर हो जाता है –

ऒमुय अकुय अछुर पॊरुम
सुय मालि रॊटुम व्वंदस मंज़
सुय मालि कॊन्य् प्यठ गोरुम तु व्यचो़रुम
ऑसुस सास तु सपनिस स्वन ।।

हिन्दी अनुवाद :–

एक अक्षर ओ३म् का पाठ किया
वही मैंने अपने हृदय में संजोया

उसे ही भीतर ध्यान बिन्दु पर केन्द्रित करके विचारा
मैं राख थी और बन गई सोना ।

शब्दार्थ :–

व्वन्दु – हृदय, एहसास, ख़्याल
कॊन्य – भीतरी ध्यान बिन्दु जहाँ समस्त इन्द्रियाँ (10) मन सहित केन्द्रित हो जाती हैं।
गारुन – ढूँढना, किसी के प्रेम में विह्वल हो जाना, किसी की याद में तड़प उठना
व्यचो़रुम – विचारा, विचार किया, खोज करना, गौर करना
सास – राख, भस्म ।

ooo

{ 48 }

کھینہٕ کھین کرٲن کُن نو واتکھ

نہ کھینہٕ گژھکھ اہنکٲری

سۆمے کھیٚے مالِ سۆمے آسکھ

سمی کھینہٕ مُژرِنے برنیت تاری

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख
नॅ ख्यनु गछ़ख अहंकॉरी
सोमुय खे मालि सोमुय आसख
समी ख्यनु मुच़रुनय बरन्यन तॉरी ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 27 पृ0 90

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख
न ख्यनु गछ़ख अहंकॉरी
सोमुय ख्यॅ मालि सोमुय आसख
समि ख्यनु मुच्रुनय बरन्यन तॉरी ।।

'The Ascent of Self' B.N. Parimoo, वाख 80, पृ0 164

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख
न ख्यनु गछ़ख अहंकॉरी
सोमुय खे मालि सोमुय आसख
सोमनु मुच़रुन यिनय बर्न तॉरी

-- लेखिका

प्रस्तुत वाख का चतुर्थ पद पाठ–शुद्धि की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

'समी ख्यनु मुचुरुनय बरन तॉरी' – समभाव होने से द्वार के तोरण–पट खुल जायेंगे। कौन द्वार के पट खोल देगा और किसके लिये ? बात केवल सन्तुलित खाद्य सेवन की ही नहीं बात मूलतः समावस्था पर इस इन्द्रियों तथ मन (ग्यारह) को केन्द्रित करने की है। बात आत्मनिग्रह और बाहर से भीतर प्रवेश कर अपनी पहचान प्राप्त करने की है। कहने में ये बातें अत्यन्त साधारण और तुच्छ दीख पड़ती है। परन्तु इन्हें व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करते समय जीव अपनी भीतर कमज़ोरियों से परिचित होता है।

'निरन्तर खाद्य पदार्थों का सेवन' वास्तव में एक प्रतीकात्मक प्रयोग है। यह भौतिक एषणाओं एवं क्षणिक सुखद प्रतीत होने वाली वासनाओं का वाचक शब्द–प्रयोग है।

लल्लेश्वरी संसार त्याग की अर्थात् विरक्त हाने की बात नहीं कहती है वह भौतिक व्यवहार को निरन्तर निबाहते हुए समभाव (सन्तुलित जीवन / व्यवहार यापन) की बात कहती है।

जीवन जीने के लिये अनुशासन का अपना विशेष महत्त्व हैं केवल बाहरी अनुशासन पर्याप्त नहीं है इसका सम्बन्ध भीतरी व्यवहार–लीला से होता है। वही जीव परमानन्द के दिव्य साक्षात्कार का भागी बन जाता है जो सीमाबद्ध रह कर कीचड़ में कमल के समान जीवन–निर्वाह करता है। जीवन जीना भी नैतिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के हेतु परमावश्यक है।

सृष्टि विकास एक निश्चित उद्देश्य और लक्ष्यपूर्ति के हेतु होता है। सभी शैवानुयायी इस तथ्य से परिचित हैं। वाख की चतुर्थ पंक्ति का शुद्ध पाठ इस प्रकार है – ' सोमनु मुचुरन यिनय बरन–तॉरी' – 'समभाव

की स्थिति में ही द्वार की चटकनियाँ खुल जायेंगी । अर्थात् समभाव में रह कर ही ससीम से असीम के लीला क्षेत्र में प्रवेश पा सकोगे।

लल्लेश्वरी स्पष्ट इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि केवल आहार हेतु जीवल जीना व्यर्थ है। 'खाने के लिये मत जियो, जीने के लिये खाओ' संकेत अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली हैं केवल भौतिक सुख वैभव के लिये जीना व्यर्थ है। सुख वैभव का प्रयोग मात्र जीने के लिये होना चाहिए। बदमस्त होने से बेहतर है बाहोश रहना ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है–

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख
न ख्यनु गछ़ख अहंकॉरी
सॊमुय खॆ मालि सॊमुय आसख
सॊमनु मुच़रुन यिनय बरन तॉरी ।।

हिन्दी अनवाद –

निरन्तर आहार करते कहीं नहीं पहुँचोगे
बिना आहार हो जाओगे अहंकारी
सन्तुलित खाओ, समभाव में रहो गे
समभाव से द्वार के तोरण–पट खुल जायेंगे ।

शब्दार्थ :–

ख्यनु ख्यनु– निरन्तन आहार करते रहने से
अहंकॉरी – घमण्ड़ी, सत्ता बोध का आधिक्य, मगरूर
सॊमुय – समभाव, सन्तुलित, न अधिक न कम
तॉरी – लकड़ी की चटकनी / सिटकिनी
सॊमनु – सम (समान) होने से ।

ooo

{ 49 }

بُتھِ کیا جان چھکھ وۄندٕ چھےٚ کٔنی
اَصلِچ کتھ زاہ سٔنی نو
پرٲن لیکھان وُٹھ اوٚنگِج گٔجی
اندرِم دُیی زاہ ژٔجی نو

बुथि क्या जान छुख व्वन्दु छुय कॅनी
असलुच क़थ ज़ाँह सनी नो
परान लेखान वुठ ऑगुज गॅजी
अन्दरिम दुयी ज़ांह चॅ़जी नो ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 142 – पृ० 232

बुथि क्या जान छुख व्वंदु छुय कॅनी
असलुच कथ ज़ांह सॅनी नो
परान फिरान वुठ ऑगुज गॅजी
ॲन्दरिम दुयी ज़ांह चॅ़जी नो ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का पाठ सही है लेकिन तृतीय पद – ' परान लेखान' के बदले होना चाहिए – ' परान फिरान' । 'लेखान' शब्द–प्रयोग लल्लेश्वरी के युग (14वीं शताब्दी) के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए । 'लिखना' शिक्षित वर्ग अथवा समुदाय तक सीमित था जबकि लल्लेश्वरी जन–सामान्य की बात कहती है। देव स्मरण के हेतु मुँह से उच्चारण करना अथवा ओष्ठों का सक्रिय रहंना स्वाभाविक है और माला फेरने के लिये अँगुली का सक्रिय

रहना ज़रूरी है।

भीतरी पहचान के लिये ही लल्लेश्वरी गुरु–मन्त्र को धारण करते हुए बाहर से भीतर प्रवेश करती है। बाह्य आकृति और वेश–भूषा का स्वच्छ रखना ही पर्याप्त नहीं भीतर के मल को जला देना और समावस्था पर पहुँचाने के हेतु सक्रिय साधनारत रहना नितान्तवश्यक है।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत वाख के तृतीय पद में 'लेखान' शब्द से अधिक उचित प्रयोग 'फिरान' शब्द का होगा तब वाख सामान्य जन के मानस का प्रतिनिधित्व करता हुआ जीव को अपनी ज़मीन की पहचान से अवगत कराता है।

वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है–

बुथि क्या जान छुख व्वंदु छुय कॅनी
असलुच कथ ज़ांह सॅनी नो
परान फिरान वुठ ऑगुज गॅजी
अॅन्दरिम दुयी ज़ांह चॅज़ी नो ।।

हिन्दी अनुवाद :–

दिखते हो बहुत सुन्दर पर पाषाण–हृदय हो
मूल तथ्य से कभी हुए न परिचित
पढ़ते सुमरते/फेरते, होंठ–अंगुली घिस गई
भीतर की दुई कभी हुई न दूर ।

शब्दार्थ :–

व्वंदु – हृदय, ध्यान, एहसास
दुयी – द्वैत भाव, ' मैं ' का एहसास

ooo

{ 50 }

اَسِہ پوندِ زوسِہ زامِہ
نیتھِے سَنان کرِ تیرتھَن
وُہرِی وَہرس نوَنے آسے
نِشہِ چھُے تہ پَر زانتَن

असि प्वंदि ज़्वसि ज़ामि
न्यथुय स्नान करि तीर्थन
वहस्य वॅहरस नोनुय आसे
निशि छुय तु पर ज़ानतन् ।।

—'ललद्यद' — प्रो0 जयलाल कौल — वाख 84 पृ0 158

अस्सि पुन्दि जामि चास्सि ।।
नितुह स्नान करि ता तीर्थन्
वह्यी वह्यस नन्नोय आसि
निशि छ्योयी तो प्रज़न्तान् ।।

—'ललवाक्याणि' — स्टीन बी0 — ग्रियर्सन — वाख 03 पृ0 65

अ ऊसे प्वंदे ज़्वसे ज़ामे
न्यथुय स्नान करि तीर्थन
वुहुस्य वॅहरस नौनुय आसे
निशि छुय तय प्रज़नावतन ।।

— लेखिका

प्रस्तुत व़ाख के प्रथम पद का प्रथम शब्द ध्यान देने योग्य है। पलकों का निरन्तर खुलना और बन्द होना, लगातार ये दो पलकें जो हरकत में रहती हैं – इस निरन्तर चलने वाली शरीर क्रिया के लिये शब्द है – ' अऊसे ' वाख में इसके बदले शब्द लिया गया है – 'असे' जो मुसकुराने के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है और यहाँ इस पद में 'असे' शब्द को कोई प्रयोजन नहीं है।

'अऊसे' शब्द का प्रयोग सार्थक है – जीव जब तक जीवित रहता है, जब तक उसमें प्राण तत्त्व है – पलकों का गिरना और खुलना निरन्तर चलता रहता है। प्राण त्याग करते ही पलकों की यह हरकत बन्द हो जाती है।

वाख में मूल अर्थ को समझने के हेतु दश नाडियों में प्रवाहित प्राण–तत्त्व का बोध होना आंवश्यक है ।

दश नाडियों में प्रवाहित वायु तथा उपवायु है –

प्राण – अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजयी ।

वह प्राण या वायु जिससे पलकें खुलती और मुंदती हैं – 'कूर्म' कहलाता है। 'नाग' शरीर में एक प्रकार का पवन है जो 'डकार' के समय हरकत में आता है। छींकने के समय शरीरस्थ वायु 'कृकर' बाहर छूट जाता है और वह शरीर संचारी वायु जिसमें जमाई आती है – देवदत्त कहलाता है।

अतः अऊसे – कूर्म
(ज़्वसे) डकार – नाग
छींक – कृकर
जमाई – देवदत्त

लल्लेश्वरी प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में शरीर में प्रवाहित इन चार वायु तत्त्वों के आधार पर चार शरीर क्रियाओं के द्वारा इस बात की ओर संकेत करती है कि जीव जब इन स्वतः होने वाली शरीर क्रियाओं के द्वारा इनसे संलग्न प्राणों का ध्यान करे तो वह अवश्य आत्मबोध की स्थिति में पहुँच जाता है।

प्रस्तुत वाख के चतुर्थ पद पर भी ध्यान देना आवश्यक है। 'निशि छुय तु पर ज़ानतन' सही पाठ नहीं है। यह वास्तव में है – 'निशि छुय त प्रज़नावतन' । पर ज़ानतन का प्रयोग उचित नहीं है। लल्लेश्वरी जीव को सचेत करते हुए कहती है कि वह तो तुम्हारे पास है केवल उसे पहचानने की आवश्यकता है। पहचान लो उसे वह तुम्हारे भीतर ही विराजमान है। यह वास्तव में आत्मबोध/आत्मज्ञान अथवा निजी पहचान को प्राप्त करने की ओर संकेत है।

हमारे तीर्थ और धाम जैसे बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, आदि वर्ष में कुछ समय के लिये बन्द रहते है। अथवा भक्तजन वहाँ तक पहुँच नहीं पाते हैं लेकिन यह आत्म–रूपी तीर्थस्थल तो पूरे साल के लिए खुला रहता है। यहाँ कोई पाबन्दी नहीं, कोई दुशवारी नहीं है केवल निष्ठा, साधना ओर बोध की आवश्यकता है।

पूरे वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

अऊसे प्वंदे ज़्वसे ज़ामे
न्यथुय स्नान करि तीर्थन
वुहुरय वॅहरस नोनुय आसे
निशि छुय तय प्रज़नावतन

हिन्दी अनुवाद :–

पलकों के खुलते झपकते, छींकते, खाँसते,
जमाई लेते (इऩसे संलग्न प्राणों का ध्यान करें)
यहाँ उपलब्ध हैं (दर्शनार्थ) वे
पास है, पहचान लो इन्हें ।

शब्दार्थ :–

अऊसे – पलकें उठते और गिरते
प्वंदे – छींकते
ज़्वसे – डकार लेते या खांसते
न्यथुय – निरन्तर
प्रज़नावतन – पहचान लो
वुहुरय वॅहरस – साल के साल , वर्ष भर ।

ooo

{ 51 }

موُڈ زانِتھ پَشِتھ تہٕ کوٚرٕ
کوٚل شُرٕ تہٕ ووٚن زَڈٕ روُپ آس
یُس یہِ دَپی تَس تی بولہٕ
یوٚہے تتو وِدِس چھُ ابھیاس

मूढ़ ज़ॉनिथ पॅशिथ ति कोर
कोल शुर तु वोन ज़ड़ु रूप आस
युस् यि दपी तस ती बोल,
योह्य तत्त्व विदिस छु अभ्यास ।।

–'ललद्यद' –प्रो0 जयलाल कौल – वाख 46–पृ0 106

मूड़् जानीत् पशीत् कर् कल्लो
श्रुतवनो जड रूपी आस्
योसे यी दपी तस् ती भल्लो
एहुय तत्त्वविद् छ्योयी अभ्यास् ।।

–'ललवाक्याणि–स्टीन बी0 – ग्रियर्सन वाख 47 पृ0 49

मूढ़ ज़ॉनिथ पशिथ तु ओन
कोल श्रुतवुन जड़ रूपी आस
युस यी दपिय तस तीय बोज़
योह्योय तत्त्व व्यॅदिस छुय अब्यास ।।

'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 10, पृ0 20

मूढ़ ज़ॉनिथ पॅशिथ ति कोर
कोल श्रुतुवुन जड़रूप आस
युस यि दपी तस ती बोज़
युहोय तत्त्व वेदिस छुय अभ्यास ।।

– लेखिका

वाख की प्रथम और तृतीय पंक्तियों के अन्तिम शब्द–प्रयोग में विद्वानों में मत भेद रहा है। सर्वप्रथम प्रथम पद के अन्तिम शब्द प्रयोग को देखिये – यह वास्तव में ' कोर' शब्द है, 'ओनॅ' या कोर शब्द नहीं है।

कश्मीरी भाषा में चार शब्द विचारणीय हैं :–

ओनॅ – दृष्टिहीन, दृष्टि वंचित, सूरदास

कोन – एक आँख की ज्योति से वंचित/काना

शोर – जिसकी एक आँख अथवा दोनों आँखों की पुतलियाँ विकार ग्रस्त हों।

कोर – जिसकी आँखें हैं परन्तु ध्यान कहीं ओर होने के कारण कुछ दिखाई नहीं देता ।

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में 'ओनॅ' शब्द प्रयोग सही नही है। इसके बदले कोर शब्द प्रयोग सार्थक और उपयुक्त है। देख कर भी कुछ नहीं दिखाई देने की स्थिति 'कोर' है।

वाख के तृतीय पद का अन्तिम शब्द 'बोल' नहीं है यह वास्तव में 'बोज़' शब्द है। पहली पंक्ति में ही ललद्यद स्पष्ट शब्दों में कहती है कि जानकर मूढ़ बन जाओ – जड़ बुद्धि और मूर्ख, फिर बोलने की नौबत कहाँ आती है ?

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय हो जाता है–

मूढ़ ज़ॉनिथ पॅशिथ ति कोर
कॊल श्रुतुवुन जड़रूप आस
युस यि दपी तस ती बोज़
युहॊय तत्त्व वॆदिस छुय अभ्यास ।।

हिन्दी अनुवाद :–

जानते हुए भी अज्ञानी बन, देखते हुए भी कहना
कुछ दिखाई नहीं दिया
सुनते हुए भी बन जा मूक और जड़ रूप हो जा
जो भी कोई कुछ कहे वही सुनता जा
यही तत्त्वज्ञानी का अभ्यास है।

शब्दार्थ :–

मूढ़ – मूर्ख, जड़ बुद्धि
पशिथ – संस्कृत – पश्य, (दृश) देखना/देखकर
कोर – जिसकी आँखें हैं पर ध्यान कहीं ओर होने पर कुछ दिखाई नहीं देता
श्रुतुवुन – संस्कृत – श्रुति (सुनने की क्रिया, कान, श्रवण) अर्थ सुनकर भी, सुनते हुए भी, सुनाई देने पर भी
जड़ – निर्बुद्धि, मूर्ख, निश्चेष्ट, बहरा
तत्त्वविद् – तत्वज्ञ, अध्यात्मवेता, जिसे मूल तत्त्व की जानकारी हो
अभ्यास – किसी काम को बार–बार करना, मश्क, आदत ।

ooo

{ 52 }

آسس کنی تہ سپنِس سیٹھاہ
نزدیکھ آسِتھ گیَس دوٗر
اندر نیبر کُنُے ڈیوٗٹھم
گاٚم کھیتھ چیتھ ژوٚنزاہ ژوٗر

ऑसुस कुनिय तु सपनिस स्यठाह
नज़दीख ऑसिथ गॅयस दूर
अन्दर न्यबर कुनुय ड्यूठुम
गॉम ख्यथ च्यथ चुवन्ज़ाह चूर।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 96 पृ० 277

ऑसुस कुनी तय सॉन्पनिस स्यठाह
नज़दीख ऑसिथ गॅयस दूर
ॲन्दर न्यॅबर कुनुय ड्यूंठुम
गॅयम ख्यथ च़्यतु चुवन्ज़ाह चूर ।।

– लेखिका

चुवन्ज़ाह चूर – कुण्डलिनी शक्ति के सक्रिय होने के समय वेग उत्पन्न होता है। वेगवान होने के समय जो स्फोट होता है उसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप महाबिन्दु है।

नाद के तीन भेद हैं :–

महानाद, नादान्त, विरोधिनी

बिन्दु के तीन भेद हैं :–

इच्छा	ब्रह्मा	सूर्य
ज्ञान	विष्णु	चन्द्रमा
कर्म	महेष	अग्नि

आज्ञाचक्र की 'सोऽहं' ध्वनि में जो ओंकार है उसे ही वर्ण उत्पन्न हुए और वर्णों से स्वर और व्यंजन ध्वनियों की सृष्टि हुई । उन्हीं के योग से अक्षर बनते हैं। अक्षरों से पद एवं पदों से वाक्य तथा वाक्यों के समुदाय से भाषा रूप धारण करती है।

जीव–सृष्टि उत्पन्न होने वाला जो नाद है वही ओ३म् है। उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं। ओम्कार से 52 मातृकाएँ (alphabets) उत्पन्न होती हैं। उनमें से 50 अक्षरमय हैं। 51वीं प्रकाश रूप (ज्ञान रूप) और 52वीं प्रकाश का प्रवाह। यह 52वीं मातृका वही है जो 17वीं जीवन कला है। 17वीं कला मात्र प्रकाश रूप है जहाँ स्थूल रूप समाप्त हो जाता है।

ऊपर वर्णित 50 मातृकाएँ लोम (स्थूल) और विलोम रूप सौ हो जाती हैं। यही सौ कुण्डल हैं और इन्हीं सौ कुंडलों को धारण किये हुए मातृकामय कुंडलिनी है। इस कुंडलिनी शक्ति से चैतन्य जीव, देह–इन्द्रिय युक्त जीवन का रूप धारण करते हुए प्राण शक्ति को संग लिये स्थूल शरीर अर्थात् अन्नमय कोश का स्वामी कहलाता है। पचास मातृकाएँ तथा मन, बुद्धि अहंकार, चित अथवा काम, क्रोध, लोभ एवं मोह कुल 54 चोर कहलाते हैं।

चतुर्थ पद में ख्यथ चथ शब्द प्रयोग भी भ्रामक है। यह वास्तव में 'चथ' शब्द नहीं है। अपितु 'च़्यथ' शब्द है। लल्लेश्वरी के कहने का

अभिप्राय यह है कि चित्त को 54 चोर (50 मातृकाएँ + मन + बुद्धि + अहंकार + चित) खा कर चले गए अर्थात् इन्हीं चौवन चोरों ने मेरे वजूद को नष्ट कर दिया ।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत होता है :–

ऑसुस कुनी तय सॉन्पनिस स्यठाह
नज़दीख ऑसिथ गॅयस दूर
अॅन्दरु न्यबरु कुनुय ड्यूंठुम
गॅयम ख्यथ च़्यतु चुवन्ज़ाह चूर ॥

हिन्दी अनुवाद :–

एकोऽहं (एक मैं था) बदल गई बहुस्याम में
थी निकट पास में चली गई दूर
भीतर और बाहर व्याप्त है वह
चित्त के चौवन चोर खा कर चले गए ।

शब्दार्थ :–

कुनुय – एक ही तत्त्व ।

टिप्पणी :–

'चौवन–चोर' की व्याख्या पहले ही दी गई है यहाँ कई और महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत किया जायेगा जो सन्दर्भ को समझने में सहायक होंगे ।

इस जीव को जीवत्व की चेतना सहस्रार चक्र से अनाहत में (हृदय–चक्र) आने पर होती है। सहस्रार चक्र में अव्यक्त नाद है, वही आज्ञा चक्र में आकर ओम्कार रूप से व्यक्त होता है। इस ओम्कार से उत्पन्न होने वाली पच्चास मात्रकाओं की अव्यक्त स्थति का स्थान सहस्रार

चक्र है। इस स्थान को अकुल स्थान कहते हैं। यही शिव –शक्ति का स्थान है यहीं श्री शिव अर्धनारीनटेश्वर रूप में स्थित है – शक्ति व्यक्त है, और शिव अव्यक्त । इस अकुल स्थान से उत्पन्न होने वाली जो जो मातृकाएं जिस जिस स्थान से व्यक्त हुई हैं, उन मातृकाओं तथा उनके स्थानों को लोम विलोम रूप से नीचे दरशाते हैं :–

क्षं

1	अं	– अकुल	ळं
2	आं	– महाबिन्दु	हं
3	इं	– उन्मना	सं
4	ईं	– समना	षं
5	उं	– व्यापिका	शं
6	ऊं	– शक्ति	वं
7	ऋं	– नादान्त	लं
8	ॠं	– नाद	रं
9	ऌं	– रोधनी	यं
10	ॡं	– अर्धचन्द्रिका	मं
11	एं	– बिन्दु	भं
12	ऐं	– आज्ञा	बं
13	ओं	– अंतराल	फं
14	औं	– लम्बिका	पं
15	अं	– विशुद्धि	नं
16	अः	– अन्तराल	धं
17	कं	– अनाहत	दं
18	खं	– अंतराल	थं

19	गं	–	अंतराल	तं
20	घं	–	मणिपूर	णं
21	ङं	–	स्वाधिष्ठसन	ढं
22	चं	–	आधार	ङं
23	छं	–	विषुव	ठं
24	जं	–	कुलपद्म	टं
25	झं	–	कुला	ञं

आत्मा से प्रकाशवती किरण फूट कर नीचे को चलती है वह सर्व प्रथम विज्ञानमय कोष में आकर ही फैलती है फिर मनोमय, प्राणमय, और अन्नमय कोश की ओर चली जाती है जहाँ जहाँ यह पहुँच जाती है वहीं वहीं हरकत देती जाती है। इसी से मन व इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। फिर मन बुद्धि को अपने वश में करने की कौशिश करता है। इसी कारण से बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और वह भ्रम विकार फैला देता है । इस भ्रामक दशा में चिन्तन कहाँ ? इसी का लल्लेश्वरी संकेत करती है कि चित्त के 54 चोर खा गए ।

ooo
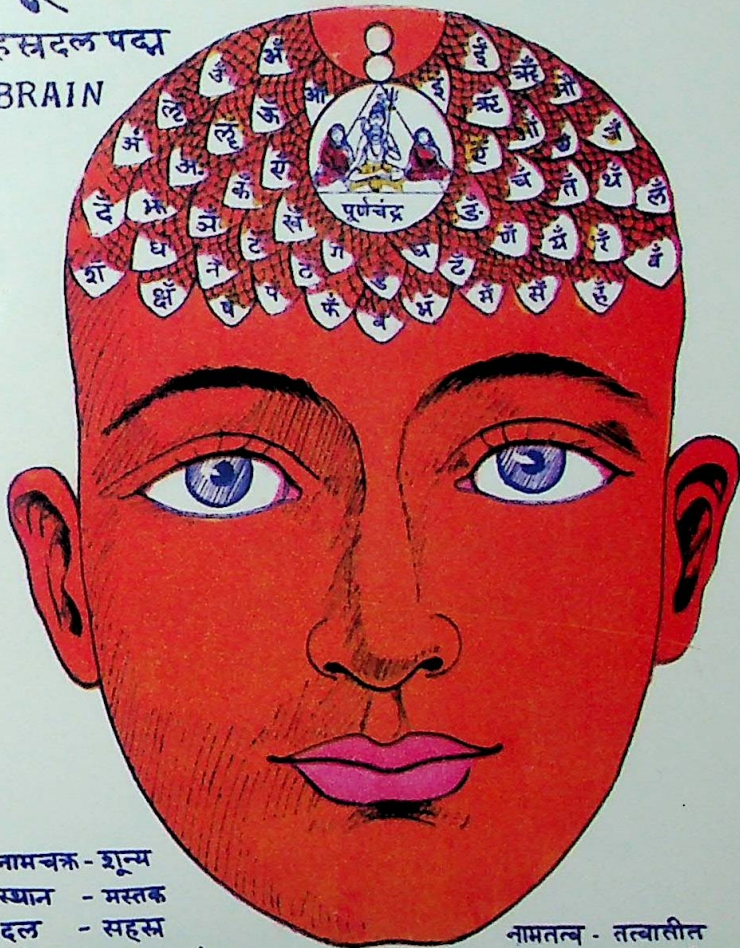
शून्यचक्र
सहस्रदल पद्म
BRAIN
बिसर्ग परम शिव
पूर्णचंद्र
नामचक्र - शून्य
स्थान - मस्तक
दल - सहस्र
दलोंकेअक्षर - अँ से क्षँ तक
नामतत्व - तत्वातीत
तत्वबीज - : बिसर्ग
बीजकावाहन - बिन्दु
देव - परब्रम्ह
देवशक्ति - महाशक्ति
यंत्र - पूर्णचन्द्र निराकार
ध्यानफल - अमर, मुक्त,
उत्पत्ति पालन में समर्थ, आकाशगामी और समाधियुक्त होता है।

{ 53 }

اومُے آدیؔ تَے اومُے سوٗرُم
اومُے تھُرُم پنُن پان
اَنِتی تراوِتھ نِتی اَے بوسُم
تَوَے پروٗوُم پرمستھان

ओमुय आद्य तय ओमुय सोरुम
ओमुय थुरूम पनुन पान
अनित्य् त्रॉविथ नित्य् – अय–बोसुम
तवय प्रोवुम परमस्थान।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 182 पृ0 269

ओमुय आदि तय ओमुय सोरुम
ओमुय थ्यरुम पनुन पान
अनित्य त्रॉविथ नित्य–अय बोसुम
तवय प्रोवुम परमस्थान ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के द्वितीय पद में 'थुरूम– शब्द प्रयोग सन्देहास्पद है। ' थुरुम' अथवा 'थुरुन' का अर्थ है – बनाना, बनावट, आकार प्रदान करना जैसे गीली मिट्टी को चाक पर चढ़ा कर आकार प्रदान करना अथवा आटे की रोटी को तन्दूर में पकाना । अपने आप को ओम् आकार प्रदान करना तनिक विचित्र सा लग रहा है क्योंकि यह निर्गुण ब्रह्म की प्रतीति

का अत्यन्त व्यापक स्तर पर सीमातीत बोध है जबकि जीव जन्म–मरण की सीमाओं में सीमित रहकर जीवन निर्वाह कर रहा है।

अतः यह 'थुरुम' शब्द न होकर 'थ्यरुम' शब्द प्रयोग है। 'थ्यर' अर्थात् स्थिर होना, नियंत्रित होना, अनुशासित होना। 'थ्यर' कश्मीरी शब्द है और अर्थ है – स्थायित्व प्राप्त होना, हमेशा के लिये बना रहना, अजर और अमर आदि।

लल्लेश्वरी कहना चाहती है कि ओम् मन्त्र जाप से मैंने अपने आपको स्थिर किया। ओम् के द्वारा ही स्थिर चित्त होकर मैंने अनित्य में नित्य स्वरूप को प्राप्त किया। क्षण स्थायी अवस्था से मुझे चिरस्थायी अवस्था का वरदान मिला । अस्थिर से स्थिर तक की यात्रा तय की।

शेष पदों में पाठ बिल्कुल शुद्ध है । सम्पूर्ण वाख का सही रूप इस प्रकार निश्चित होता है :–

ओमुय आदि तय ओमुय सॊरुम
ओमुय थ्यरुम पनुन पान
अनित्य त्रॉविथ नित्य–अय बोसुम
तवय प्रोवुम परमस्थान ।।

हिन्दी अनुवाद :–

ओम आदि स्वरूप है मूल स्रोत ओम् का किया विचारण
ओम् से निज अस्तित्व को किया स्थिर
अनित्य त्याग कर नित्य का हुआ आभास
इस लिये हुई प्राप्ति परमस्थान की ।

शब्दार्थ :–

ओम् – सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का सन्तुलित और समन्वित

स्वरूप जो सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी गुणातीत है। शाश्वत विभूति है। सम्पूर्ण सृष्टि का प्राण तत्त्व है। अद्भुत और अलौकिक आभास है।

आदि – मूल स्रोत, प्रथम, प्रधान, मूल कारण परमेश्वर

थ्यरूम – स्थायित्व प्राप्त करना, स्थिरता, अमरत्व प्राप्त करना।

अनित्य – जो सदा न रहे, नश्वर, क्षण स्थायी, अस्थिर

नित्य – सदा बना रहने वाला, अविनाशी, शाश्वत, उत्पत्ति और विनाश से रहित, अनश्वर

प्रोवुम – प्राप्त हुआ।

परमस्थान – सर्वोच्च स्थान, आनन्द अवस्था, आत्म बोध की अवस्था ।

ooo

پرتھے تیرتھن گژھان سنیاس
گواران سو درشنہ میول
ژِتا پٲرِتھ موٗ نِشپتھ آس
ڈیشکھ دوٗرے درمن نیول

प्रथय तीर्थन गछ़ान सॅन्यास
गुवारान स्वदर्शनु म्युल
च्य़ता पॅरिथ मो निष्पथ आस,
डेशाख दूरे द्रमन न्युल

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 104 पृ0 182

पृथिवून तीर्था गमनिय् ।। सद्मस्ति
ग्वारहा सुरदर्शन् ता मीलो
चित्ता पत्तोत ।। मौ निष्पत्त् अस्ति,
दिशिह् बूर्या द्रुमन् नीलो ।।

–'ललवाक्याणि' – ग्रियर्सन (स्टने बी0) – वाख 6 पृ0 56

प्रथॅय तीर्थन गछ़ान सन्यॉस,
ग्वारान स्वदर्शनु म्युल ।
च्य़तुय प्रॉविथ मो निष्पथ आस,
डेशक दूरे द्रुमन न्यूल ।।

– लेखिका

वाख के तृतीय पद में 'पॅरिथ' शब्द प्रयोग विचारणीय है। यह 'प्राविथ' शंब्द है जिसका अर्थ है – प्राप्त करना, उत्पन्न होना।

'ग्वारान' – और 'गारान' समान शब्द नहीं है।

'ग्वारान' – चिन्तन, मनन, सोच–विचार और आत्मबोध के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है।

'गारान' तलाशने और ढूँढने के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है।

लगता है कि लल्लेश्वरी के प्रस्तुत वाख के मूल कथ्य को सही सन्दर्भ में नहीं लिया गया है अतः इस वाख के अर्थ में पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है ।

लल्लेश्वरी कहना चाहती है कि जीव अपने आत्म रूपी तीर्थ से ही सन्यास लेकर हर तीर्थ पर जाकर अपनी उपस्थिति दर्ज करता है और यह विश्वास उसके मन में घर कर जाता है कि सुदर्शन से मेल होनें का यही पथ है।

जब चित्त में ही स्वदर्शन की प्राप्ति होगी तो फिर निष्पथ होने की क्या आवश्यकता है । इसीलिये लल्लेश्वरी उसे निष्पथ न होने की चेतावनी देती है। सन्दर्भ ही बदल जाता है –

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय होता है :–

प्रथॅय तीर्थन गछ़ान सन्यास,
ग्वारान स्वदर्शनु म्युल ।
च़्यतुय प्रॉविथ मो निष्पथ आस,
डेशक दूरे द्रुमन न्यूल ।।

हिन्दी अनुवाद :–

हर तीर्थ पर जाता है **(अपने आत्मा रूपी तीर्थ से)**
विचरण करता सुदर्शन मिलन की

चित्त में उपलब्धि होती तो निष्पथ न होता
तुझे अपने मन के अन्दर ही दिखाई देगा
प्रकृति का लावण्य
(तीर्थ का वैभव, छटा–सौन्दर्य)

शब्दार्थ :–

सन्यास – (सं0 सन्नयास); विरक्ति, परित्याग, (सन्यासी– जिसने त्याग किया हो, विरक्त, उदासीन)।
ग्वारान – विचारणा, चिन्तन, ध्यान
स्वदर्शन – प्रिय दर्शन, सुदृश्य, शिव
च़्यतुय – चित्त से, अन्तःकाण से, मन से
निष्पथ – पथ भ्रष्ट, पथ विहीन
द्रमुन – हरियाली, नई नई उगी हुई घास
न्यूल – प्रकृति के लावण्यमय नील परिधान ।

ooo

{ 55 }

اور تہِ پانے یور تہِ پانے
پتے وانے روزِ نہٕ زانہہ
پانے گُپِت پانے گیانی
پانے پانس موٗد نہٕ زانہہ

ओरु ति पानय योरु ति पानय
पतय वाने रोज़ि नु ज़ाँह ।
पानय गुपित पानय ग्यॉनी
पानय पानस मूद नु ज़ाँह ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 184 पृ0 270

ओरु ति पानय योरु ति पानय
पथ वान्ये रोज़ि नु ज़ाँह
पानय गुप्त पानय गयॉनी,
पॉन्यु पानय मूद नु ज़ाँह ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के द्वितीय और चतुर्थ पद में प्रारम्भिक शब्द प्रयोग पर विचार करना आवश्यक होगा। 'पतय वान्ये ' निरर्थक है। इस शब्द का कोइ अर्थ नहीं है । ऐसा शब्द प्रयोग भ्रामक है और अर्थ–अभिप्राय को जानने में बड़ी दुश्वारी खड़ा करता है ।

यह वास्तव में 'पथ वान्ये ' शब्द है। कश्मीरी में कहते हैं – ' दान्द

वान्य लागुन' – बैल ज़मीन खोदने के लिये जुताई में लगा देना अर्थात् किसी काम में लग जाना। सृष्टि रचना के हेतु परमब्रह्म कभी पीछे नहीं रहेंगे।

चतुर्थ पद में ' पानय पानस' शब्द प्रयोग भी विचारणीय हैं। 'पानय पानस मूद न ज़ाँह – इस पद का कोइ अर्थ नहीं। अब इसी पद में ' पानय पानस' के बदले 'पॉन्य पानय' शब्द प्रयोग कीजिये तो अर्थ बिना किसी अवरोध को व्यक्त हो जाता है।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

ओरु ति पानय योरु ति पानय
पथ वान्ये रोज़ि नु ज़ाँह
पानय गुप्त पानय गयॉनी
पॉन्य पानय मूद नु ज़ाँह ।।

हिन्दी अनुवाद :–

उस ओर भी स्वयं है, इस ओर भी स्व्यं
सृष्टि क्रिया में कभी पीछे नहीं रहेगा
स्वयं गुप्त है और स्वयं ज्ञानी
स्वयं कभी मरता नहीं।

विशेष टिप्पणी :

' पूजक भी वही, पूजा भी वही
स्रष्टा भी वही, सृष्टि भी वही
ज्ञानी भी वहीं, ज्ञाता भी वहीं
बिन्दु भी वही, सागर भी वही
दाता भी वही, होतव्य भी वही
आँसू भी वही, मुसकान भी वही

इन्कार भी वही, इक़रार भी वही
यह दिन का उजाला
यह रात की चुप्पी
सब कुछ तो वही
जो मरता कभी नहीं।।

शब्दार्थ :–

गुप्त – छिपा या छिपाया हुआ, अदृश्य, गूढ़

गयॉनी – ज्ञानवान, ब्रह्मज्ञानी

पथ – पीछे

वान्ये – बैल जोतने की विधि, ज़मीन जोतना, प्रस्तुत सन्दर्भ में सांकेतिक अर्थ – सृष्टि क्रिया में लगा रहना।

ooo

لۆب مارٕن سَہَز وِژارٕن
دٕرۆگ زانٕن، کلپَن تراو
نِشہِ چھےٚ تہٕ دوٗر موگارٕن
شۄنٛیس شۄنیاہ میٖلِتھ گوو

लूब मारुन सहज़ व्यचा़रुन
द्रोग ज़ानुन कल्पन त्राव ।
निशि छुय तु दूर मो गारुन
शून्यस शून्या मीलिथ ग्वव ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 90 पृ0 164

lūb mārun sahaz vĕčārun
drŏgu zānun kalpan trāv
nishĕ chuy ta dūru mō gārun
shūñĕs shūñāh mīlith gauv

ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 30 पृ0 51

लूब मारुन सॅहज़ व्यचा़रुन
द्रोग ज़ानुन कल्पन त्राव
निशि छुय तय दूर मो गारुनन
शून्यस शून्याह मीलिथ गौ ।।

The Ascent of Self' - B.N. Parimoo -वाख 43 पृ0 101

लूब मारुन सॅहज़ व्यचारुन
द्रोग ज़ानुन कल्पन त्राव
निश छुय तु दूर मो गारून
शेयनि शुनिथ शुन्या प्राव

– लेखिका

प्रस्तुत वाख पर विचार करते हुए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि इस वाख का अन्तिम पद वाख के प्रथम तीन पदों के साथ किसी भी प्रकार से जुडा हुआ नहीं है । पूरा पद ही कल्पित है । लल्लेश्वरी ने इस वाख का चतुर्थ पद कैसे कहा होगा किसी ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया है।

आश्चर्य यह है कि इस वाख से पूर्व (वाख 89 प्रो0 जयलाल कौल) तथा इस वाख के पश्चात् (वाख 91 प्रो0 जयलाल कौल) अर्थात् तीनों वाखों में लगातार यही पंक्ति इसी रूप में दोहराई गयी है जैसे लल्लेश्वरी ने वाख नहीं 'वचन' कहे हों।

वास्तव में इस वाख के चतुर्थ पद का शुद्ध रूप खो जाने के बाद विद्वान बन्धुओं ने अपनी उर्वर कल्पना का प्रयोग करते हुए ' कह गयो सन्त कबीर ' पद्धति के आधार पर इस पंक्ति को गढ़ा है और बाद में लोगों ने मात्र अनुकरणात्मक पद्धति पर बात को आगे बढ़ाया है।

वस्तुतः ध्यान देने योग्य दो शब्द हैं – ' शून्य' और शुन्य ' । दोनों शब्द समानार्थक भी हैं और विशिष्ट अर्थ का बोध कराने वाले भी हैं।

शून्य – तुच्छ, हीन, अपूर्ण, अभावग्रस्त, निराकार, कुछ नहीं, ज़ीरो, रहित, ब्रह्म।

शुन्य – शून्य, खाली, रिक्त

'शुन्य' – शब्द निराकार ब्रह्म का वाचक शब्द है और अत्यन्त तुच्छ अणु मात्र जीव, जो कई दृष्टियों से अपूर्ण और अभावग्रस्त है, का बोधक भी है।

कुण्डलिनी योग में षट् चक्रों को पार करके ब्रह्मरन्ध्र से होते हुए सहस्रार में जब योगी को प्रवेश मिलता है तो उसे ब्रह्म के असीम वैभव का एहसास होता है अर्थात् शुन्य को प्राप्त हो जाता है। लल्लेश्वरी ने 'शुन्य' शब्द निराकार असीम ब्रह्म के अर्थ में प्रयोग में लाया है। मैं पुनः इस बात को स्पष्ट करना चाहती हूँ कि वास्तव में दोनों शब्द समानार्थी हैं लेकिन वाख में 'शुन्य' विशिष्ट अर्थ में प्रयोग में लाया गया है। शब्दों के विशिष्ट अर्थ प्रयोग (अर्थ सीमन) का यह एक सुन्दर उदाहरण है। प्रस्तुत वाख के चतुर्थ पद का मूल पाठ वास्तव में इस प्रकार है :–

'शॅयनि शुनिथ शुन्या प्राव'

अर्थात् छ' चक्रों से बाहर निकल कर मुक्त होकर अलग हटकर अथवा आगे निकल कर 'शुन्य' (सहस्रार की अवस्था) को प्राप्त करो।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है :–

लूब मारुन सॅहज़ व्यचारुन
द्रॉग ज़ानुन कल्पन त्राव
निश छुय तु दूर मो गारून
शॅयनि शुनिथ शुन्या प्राव

हिन्दी अनुवाद :–

लोभ मार कर और सहज विचार से
गरानी समझने का कम्पन छोड़ दो।
पास है तो दूर मत ढूँढो

छ' चक्रों से शून्य (ज़ीरो) होकर शुन्य को प्राप्त करो।

शब्दार्थ :–

सहज़ व्यचारुन – सहजावस्था का ध्यान धारण करना, शैव दर्शन में सब से महान और उत्तमावस्था। इस अवस्था में ज्ञान और अपनापन दोनों भिन्न न होकर एक ही स्वरूप में दिखाई देते हैं।

कल्पन – कम्पन

गारुन – ढूँढना

शेयनि – छ' चक्रों से

शुनिथ – शून्य होकर, ज़ीरों होकर, बाहर निकल कर, मुक्त होकर

शुन्या प्राव – शुन्य (निर्गुण निराकार ब्रह्म) को प्राप्त करो।

द्रोग – महंगा, गरानी।

ooo

دِہچِ لَرِ دارِ بَر ترۄپرِم
پرانہٕ ژوٗر رۄٹُم تہٕ دِیُتمَس دَم
ہردِیچِ کوٗٹھرِ اَندر گۄنڈُم
اومکِ چوبکِ تُلمَس بَم

दिहचि लरि दारि–बर त्रोपरिम
प्रानु चू़र रोटुम तु द्युतमस दम।
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोण्डुम
ओमुकि चोबुकि तुलमस् बम ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 141 पृ0 232

दिहिचि लरि दारि–बर त्रोपुरिम
प्राणु–चू़र रोटुम तु द्युतुमस दम
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोंडुम
वोमुकि चोबुकु तुलिमस बम ।।

The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 31 पृ0 74

दिहिचि लरि दारि–बर त्रोपरिम
प्राण चू़र रोटुम तु द्युतमस दम
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोंडुम
वोमुकि चोबुकु तुलिमस बम

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के मूल अर्थ को समझने के लिए प्राणायाम क्रिया, जो वास्तव में अष्टांग योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, का बोध होना नितान्तावश्यक है। प्रश्वास को भीतर खींच कर अर्थात् फेफड़ों में शुद्ध हवा भरके कुम्बक प्रक्रिया से उसे शरीर के रोम-रोम तक पहुँचाने और तत्पश्चात् रेचक के द्वारा निश्वास के रूप में उसे धीरे-धीरे बाहर फेंकना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण अनुशासन-प्रक्रिया है। प्राणायाम वास्तव में आत्मनियंत्रण की आन्तरिक प्रक्रिया है जो जीव की प्राण शक्ति को नियमित, संयत और सोद्देश्य बना देती है।

'दिहिचि लरि दारि बर त्रोपरिम ' (देह रूपी मकान के द्वार और खिडकियाँ बन्द कर दीं)।

यह वास्तव में शरीर के नौ द्वारों की ओर संकेत है जो सदा खुले रहते हैं और दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) जिसे खुला रहना चाहिए था यह सदा बन्द रहता है और जीव सांसारिक मोह माया में लिप्त रह कर इहलोक और परलोक दोनों गँवा देता है।

अतः इन नौ द्वारों को बन्द करके ध्यानस्थ रहना आत्मशुद्धि के हेतु नितान्तावश्यक है।

द्वितीय पद में प्राणायाम की कुम्भक क्रिया की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है । प्राण को नियंत्रित करके नाभिस्थान के नीचे तक दम साध लिया (श्वास रोकने का अभ्यास करना – दम साधना) तब कहीं हृदय की कुटिया के भीतर अनाहत नाद सुनाई देता है। योग साधक मेरी बात और अभिप्राय को तुरन्त समझ लेंगे ।

प्रस्तुत वाख का चतुर्थ पद विचारणीय है। इस पद का प्रथम शब्द 'ओमकि' अर्थात् ओ३म् के (ओ३म् के चाबुक से पीटा ख़ूब इसको बार बार)।

यह 'ओ३म्' शब्द नहीं है। श्री बी0 एन0 पारिमू साहब ने अपनी पुस्तक Ascent of Self के 74वें पृष्ठ पर इस वाख को (वाख संख्या 31) के अन्तर्गत दिया है और 'ओमकि' न लिखकर सही शब्द 'वोमुकि' का प्रयोग किया है।

यह वास्तव में ओ३म् शब्द नहीं है। अपितु कुंडलिनी जाग्रण की क्रिया में मूलाधार के द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान का बीज मन्त्र है। कुंडलिनी जागरण के छ' चक्र :–

	भीजमन्त्र	**स्थान**
मूलाधार	लँ	नाभि के नीचे शिशन तक कहीं
स्वाधिष्ठान	वँ	नाभि के पास
मणिपुर	रँ	नाभि के ऊपर
अनहत	यँ	हृदय
विशुद्धाख्य	हँ	कंठ
आज्ञा चक्र	क्षँ	त्रिकुटी

'वोमॅं' तत्त्व बीज मन्त्र है स्वाधिष्ठान चक्र का । इसके

देवता – विष्णु

ज्ञानेन्द्रिय – रसना

नाम तत्त्व – जल

लोक – भुवा – लोक सात माने जाते हैं, भू, भुवः,स्वः, महा, जनः, तपः, सत्यम् (शून्य) । इसे ज़िक्र जोहर भी कहते हैं। एक तरीका जाप का ज़िक्ररे जुहर कहलाता है, इसमें अन्दर चक्रों के स्थान पर अक्षरों का उच्चारण करते समय उनका रूप भी बनाते हैं और यह अक्षेरों का रूप स्याही से नहीं बल्कि प्रकाश (नूर) से लिखा हुआ है। ऐसे संकल्प करते हैं और कभी–कभी उस मन्त्र के बदलने के लिए अक्षरों को

आगे पीछे भी कर देते हैं। प्रत्येक शब्द का अक्षर के ठहराव और हरकत के लिए कुछ नियम हैं। जो जानकार लोगों से सीखे जाते हैं । ठीक उसी स्थान से कि जहां जिस चक्र में जो अक्षर रखना चाहिए जिह्वा से बोलना ज़िक्रे जोहर और मन से उच्चारण करना 'खफी' कहलाता है।

'वोमॅ' वस्तुतः मन्त्र है और इसी मन्त्र रूपी चाबुक से मैंने अपने प्राण तत्त्व पर प्रहार किये और उसे पीट–पीट कर उजागर किया, दीप्तिमय बनाया, प्रकाशित किया ।

सम्पूर्ण पवाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

दिहिचि लरि दारि–बर त्रोपरिम
प्राण चूर रोटुम ्तु द्युतमस दम
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोंडुम
वोमुकि चोबुकु तुलिमस बम

हिन्दी अनुवाद :–

शरीर गृह में बन्द किये द्वार खिडकियाँ
प्राण चोर को पकड़ा और साध लिया दम
हृदय की कोठरी में उसे बन्द किया
'वँ' के चाबुक से पीट पीट कर किया उजागर ।

शब्दार्थ :–

दिहिच लॅर – काया रूपी मकान
त्रोपुरिम – बन्द किये
द्युतमस दम – दम साधना

वँ – स्वाधिष्ठान चक्र का बीज मन्त्र, देवता – विष्णु, नामतत्त्व – जल, लोक – भुवः, कंडलिनी जागरण में मूलाधर के निकट द्वितीय चक्र का बीज मन्त्र ।

तुलिमस बम – बहुत पीटा, जैसे हम कहते हैं –'ह्यो बु हा तुलस बम लॉय लॉय' ।

ooo

स्वाधिष्ठानचक्र
(अर्थात्)
षट्दल पद्म
HYPOGASTRIC PLEXUS
१ सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रह्मनाड़ी
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान ।
वँ
लँ
भँ
रँ
मँ
यँ
वरुणचक्र
वँकार बीज वरुण
विष्णु
राकिनीदेवी
मकर
सूत्रा

{ 58 }
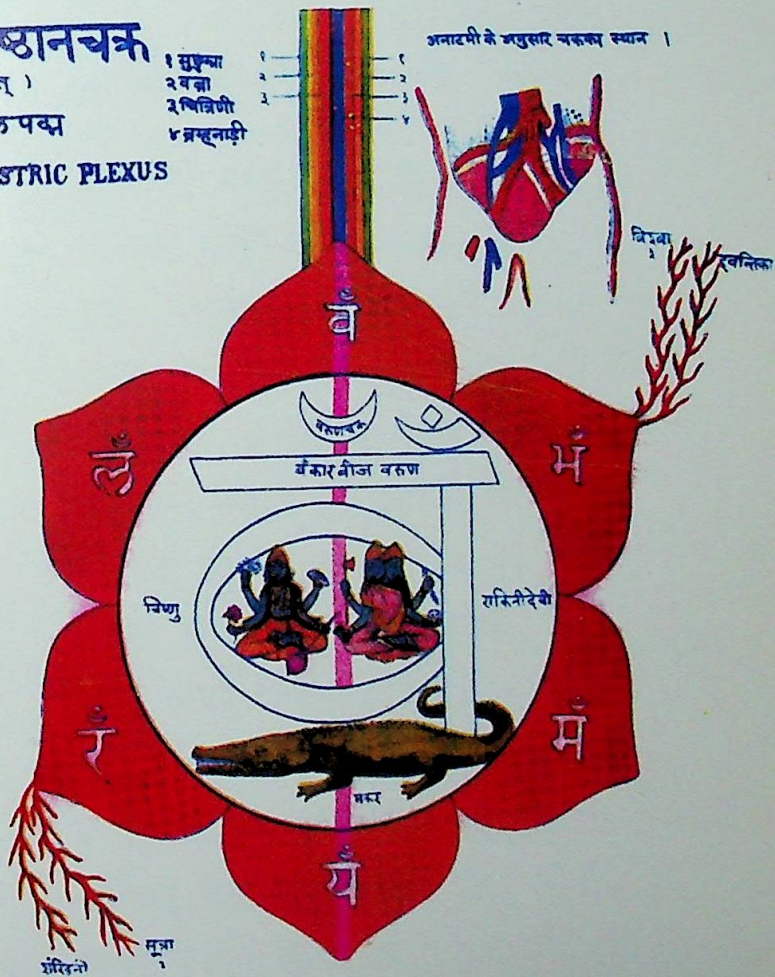
دواد شانتہٕ منڈل یَس دیوَس تھجِہٕ
ناسِک پوَنہٕ دآری اناہتہ رَو
سویَم کلپن اَنتہٕ ژجِہٕ
پانَے سُہ دِیوٕ تہٕ ارژُن کس

द्वादशान्तु मण्डल यस् दीवस थजि
नासिक्य पवनि दॉर्य अनाहत् रव
स्वयं कल्पन अन्ति च़जि
पानय सु दीव तु अर्चुन कस् ।।

–'ललद्यद'– प्रो० जयलाल कौल – वाख 72 पृ० 144

द्वादशान्त् मण्डल ।। यस् ।। थज्यी
नासिकि पवुन् ।। अनाहत रव ।।
सायम् ।। अन्तिहि कल्पन् चज्यी
क्वयो स्वपमे देवर्चुन् करव् ।।

–'ललवाक्याणि' – ग्रियर्सन – वाख 11, पृ० 53 स्टेन बी०

द्वादशी मंडलस युस देह देवस्थलज़ि
नासिक्य् पवन दॉर अनाहत् रव
स्वयमु कल्पुन अन्ति च़जि
पानय सु दीव त अर्चुन कस ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद पर विचार करने की आवश्यकता है। वाख के अभिप्राय और कथ्य के विषय में मैं विद्वान बन्धुओं की मान्यताओं और विचारों से हटकर अपनी बात रखना चाहती हूँ ।

'द्वादशान्त मंडल' को लेकर विद्वानों ने अपनी–अपनी राय दी है और उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पारिमू साहिब ने 'अन्तः द्वादशान्त' मंडल की बात कही है। ग्रियर्सन ने द्वादशान्त मंडल' को ब्रह्मरन्ध्र मंडल की बात कही है। ग्रियर्सन ने द्वादशान्त मण्डल को ब्रह्मरन्ध्र कहा है और श्री तालिब ने इसे श्वास–प्रश्वास की निरन्तर क्रिया के साथ जोड़ कर 'ओ३म्' ध्वनि की पहचान के साथ जोड़ा है । 'विश्व सार तन्त्र ' में कहा गया है कि इस स्थान (द्वादशान्त मण्डल) में 'अनाहत' शब्द रूपी ध्वनि ही सदा शिव है।

त्रिगुणमय ओम्कार इसी स्थान में व्यक्त होता है। दीप ज्योति के समान जीवात्मा इस स्थान में निहित रहती है। दृश्य जगत में अपने और पराये की भावना तथा देहात्मवादियों की विचार पद्धति ही 'हृदय ग्रन्थि ' है। इसी 'हृदय ग्रन्थि' में जीवात्मा उलझी रहती है।

गुरु कृपा से ही 'हृदय ग्रन्थि' का अन्त होता है। योग–मार्ग में 'द्वादशान्त कमल' के भव्य रूप की कल्पना की गई है । बाह्य कल्पना जब अरूप होकर भीतर प्रवेश करती है तो अकल्पन (अकल्पना) कहलाती है। इस अकल्पन वृत्ति के बारह दल माने गये हैं और इनकी स्थिति मंडलाकार कमल स्वरूप में स्वीकार की जाती है।

द्वादश मंडल कमल ज्ञानियों में ऊर्ध्वमुखी (जिसका मुख ऊपर की ओर हो) तथा अज्ञानियों में अधोमुखी (जिसका मुख नीचे की ओर हो) होता है। इसको जानने वाला अर्थात् इसकी पहचान प्राप्त करने वाले को ही 'वेद–विद्' कश्मीरी 'व्योद' कहते हैं ।

ज्ञान मार्ग की इन पेचीदा पारिभाषिक स्थितियों से लल्लेश्वरी पूर्ण परिचित थीं यही कारण है कि प्रस्तुत वाख में पारिभाषिक शब्दावली का खुल कर प्रयोग किया गया है। कुंडलिनी योग साधना में भी विशिष्ट शब्दावली प्रयुक्त की जाती है जैसे सहस्रार कमल, ब्रह्मरन्ध्र, त्रिकुटी आदि ।

वस्तुतः योग साधना में एक निश्चित अवस्था की प्रतीती ही द्वादशान्त मण्डल का ज्ञान बोध कहलाता है। द्वादश से अभिप्राय बारह है (10 इन्द्रियाँ + मन + बुद्धि) इन 12 शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के बाद ही योगी के मानस में द्वादश दल कमल के अद्‌भुत लावण्यमय रूप की प्रतीति होती है। जिस प्रकार सूफी साधना में साधक को विभिन्न मंज़िलों (शरीयत, तरीकत, मारिफ, हकीकत) पर पहुँच कर विभिन्न अवस्थाओं (नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत) का बोध होता है उसी प्रकार योग मार्ग में योग साधक साधना के विभिन्न पड़ाव तय करता हुआ द्वादशान्त मण्डल में प्रवेश पाकर प्रकाश रूप बुद्धि का पूर्ण विकास प्राप्त करता है ।

वाख का सर्वमान्य पाठ रूप इस प्रकार है–

द्वादशी मंडलस युस देह देवस्थलज़ि
नासिक्य् पवन दॉर अनाहत् रव
स्वयमु कल्पुन अन्ति च़जि
पानय सु दीव तु अर्चुन कस ।।

हिन्दी अनुवाद –

द्वादशान्त मंडल जो देह –. देव का स्थल है
नासिका से प्रवाहित पवन को, नियंत्रित कर भीतर अनाहत रव से
वह यम भय का कम्पन अन्दर से शान्त हो जायेगा
तब वह स्वयं ही देव है तो पूजा किस की ?

यही वास्तव में 'अहं ब्रह्मास्मि न द्वितीय अस्ति' का स्थिति बोध है।

शब्दार्थ :–

द्वादशान्त मंडल – बारह दलों की सीमाओं से बना गोलाकार मण्डल ।

स्थल ज़ि – देह – देव का स्थान है

नासिक्य – नासिका

स्व–यमु – वह यम का कम्पन

अर्ऱ्चुन – पूजन

अन्ति – भीतर से

रव – (ध्वनि, शब्द, नाद, प्रकाश लपट और अनाहत ध्वनि ।

कल्पुन – कम्पन, डरना, काल का भय

ooo

{ 59 }

اَزپا گایتری ہمس ہمس ژپِتھ
اَہم تراوِتھ اَدٕ سۓ رَٹھ
یٚمی ترووٗ اہم سۓ رۄد پانے
بوٗ نہ آسُن چھے وۄپدیش

अज़पा गायत्री हम्सु हम्सु ज़ॅपिथ
अहं त्रॉविथ अदु सुय रठ ।
येमी त्रोव अहं सुय रूद पानय
ब्व न आसुन छुय व्पदीश ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 168 पृ0 262

अज़पा गायत्री हंसु हंसु ज़ॅपिथ
अहम् त्रॉविथ सुय अद् रठ
यम्य त्रोव अहं सुय रूद पानय
बोह न आसुन छुय व्पुदीश ।।

The Ascent of Self' - B.N. Parimoo, वाख 73 पृ0 154

अज़पा गायत्री हम्सु हम्सु ज़ॅपिथ
हम त्रॉविथ अ़दु सू अुय रठ
येम्य त्रोव 'अहं' सुय रूद पानय
ब्व नु आसुन छुय 'व्पदीश ' ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख में 'अज़पा' तथा 'अहम्' शब्द विचारणीय है। अज़पा एक मन्त्र है जिसका उच्चारण सांस के भीतर–बाहर आने जाने से किया जाता है। इसे हंस मंत्र या 'सोऽहम' शब्द भी कहते हैं। यह मन्त्र जप का एक प्रकार है जिसका उच्चारण मुँह से नहीं किया जाता है अपितु मन ही मन जप–क्रिया चलती रहती है।

हम्सु   हम्सु

प्रश्वास + निश्वास क्रिया

सो + हम

सोऽहं – सोऽहम् – सोऽहमस्मि –

' इसका तात्पर्य है कि मैं ब्रह्म हूँ । यह वेदान्त दर्शन का वाक्य है जिसमें यह माना जाता है कि इस ब्रह्माण्डभर में ब्रह्म व्याप्त है और जो कुछ है सब ब्रह्म ही है। जागतिक माया के आवरण के कारण जीव अपने (ब्रह्म) रूप को पहचान नहीं पाता, जब उक्त आवरण हट जाता है तब वह ब्रह्म ही हो जाता है।'

बृहत् हिन्दी कोश – ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी पृ० 1300

इसी मन्त्र जाप को श्वास–उच्छवास की हंस गति भी कहते हैं ।

'सोऽहं' मन्त्र जाप में जब तक – 'हम सो ' का आभास रहता है अर्थात् जब तक जीव के चिन्तन में ' मैं' की प्राथमिकता रहती है तब तक 'हम' का बोध प्रधान होता है।

और यह 'हम' का एहसास प्रिय मिलन के पथ में असंख्य बाधाएँ खड़ा कर देता है। यह मात्र 'अहम्' की बात नहीं है अपितु 'अहम्' की सीमाओं के बाहर व्यापक अर्थ बोध की प्रतीति कराता है। अहं अपनी सता के बोध का गर्व या घमण्ड है और 'हम' एक समान होने का अथवा 'एक

सा' होने का विचलित कर देने वाला आभास है।

अतः प्रस्तुत वाख की द्वितीय पंक्ति में 'अहम्' शब्द के बदले 'हम' शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक और विस्तृत अर्थ का बोधक दिखाई देता है।

इस सन्दर्भ में लल्लेश्वरी के इस वाख को देखने की आवश्यकता है जिसे प्रो0 जयलाल कौल ने क्रम संख्या 225 के अन्तर्गत अपनी पुस्तक के पृष्ठ 293 पर लिपिबद्ध किया है –

ब्रह्म बुर्जस प्यठ वातनोवुम
दिलचे तारि सुत्य दोपमस लम
हम सू त्रॉविथ सूहम (सोऽहं) प्रोवुम
दोपनम लले अतिथॅई श्रम ।'

हम सो . . . . हम सो . . . . हमसो

'हम ' त्याग दीजिये तो केवल 'सो' शेष रह जायेगा ।

'सो' का शाब्दिक अर्थ है – वह अर्थात् ब्रह्म और 'हम' मेरी खुदी का एहसास कराने के साथ–साथ मेरे वजूद के गर्वीले एहसास की प्रतीति भी कराता है।

वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

अज़पा गायत्री हम्सु हम्सु ज़ॅपिथ
हम त्रॉविथ अदु सू अुय रठ
येम्य त्रोव 'अहं' सुय रूद पानय
ब नॅ आसुन छुय 'व्पदीश ' ।।

हिन्दी अनुवाद –

अजपा गायत्री के 'हमसो' पाठ का जप करते हुए

'हम' त्याग कर 'सो' का फिर जप करना
जिसने ' मैं' भाव छोड़ा, वही रह गया शेष
' मैं नही हूँ' यही है उपदेश ।

शब्दार्थ :–

अज़पा – एक मन्त्र जिसका उच्चारण श्वास क्रिया के साथ जुड़ा है। यह सोऽहं अवस्था की प्रतीति कराता है।

गायत्री – एक वैदिक छंद जिसमें आठ–आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं। उक्त छन्द में रचित एक वैदिक मन्त्र जिसका उपदेश उपनयन संस्कार में द्विज बालक को किया जाता है।

जपना – जप करना– किसी मन्त्र/स्तोत्र अथवा ईश्वर नाम स्मरण को धीमे स्वर से दुहराना/दोहराना।

हम्सु – हम्सु – 'हम सो' 'हमसो' (मैं प्रमुख वह गौण)

हम – मेरे अपने वजूद का एहसास

अहम् – अहम् भाव, घमण्ड, गर्व, अहं तत्त्व ।

ब्व न आसुन – अपने वजूद का एहसास न होना

व्वपदीश – नसीहत, शिक्षा, सीख, सलाह, लाभप्रद सम्मति, अच्छी राय ।

ooo

{ 60 }

اندری آیس ژندرے گاران

ژھاران آیس ہیَن ہہی

ژےے ہے ناران! ژے ہے ناران!

ژےے ہے ناران! یم کم وہی

अॅन्दरी आयस चॅन्द्रय गारान
छ़ारान आयस हियन हिह्य ।
चुय हय नारान । चुय हय नारान
चुय हय नारान । यिम कम विह्य।।

–'ललद्यद' –प्रो0 जयलाल कौल – वाख 128 पृ0 210

ॲन्द्रिय आयस च़े ॲन्द्रिय गारान
ग्वारान आयस हिह्यन हिह्य
चुय अय नारान ! चुय अय नारान
चुय अय नारान ।। यिम कम विह्य् ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद विचारणीय है –

' ॲन्द्रिय आयस च़न्द्रय गारान '

इस पद का अर्थ ध्यान देने योग्य है। 'चन्द्ररुय' शब्द का प्रयोग क्या सार्थक है। चान्द का इस पद में अथवा इस के अर्थ तत्त्व के साथ क्या सम्बन्ध है ? भीतर ही भीतर मैं चाँद ढूँढती रही । यह प्रयोग ही

वास्तव में सन्देहास्पद है। यह शब्द 'च़न्द्ररुय' नहीं है अपितु चॅ़ + ॲन्द़रय' शब्द है। सम्पूर्ण पद का अर्थ इस प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है। ' मैं अन्दर ही अन्दर तुझे ढूँढती रह गई । तनिक योग साधना में कुण्डलिनी–योग पर विचार कीजिए । सब कुछ भीतर ही भीतर उपलब्ध है केवल तलाशें यार के दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

द्वितीय पद में 'छ़ारान' शब्द प्रयोग प्रक्षिप्त अर्थात् बाद को जोड़ दिया गया अंश है। यह वास्तव में 'ग्वारान' शब्द है। साधना में चिन्तन, मनन, आत्म बोध, तथ्यान्वेषण की अपनी महत्ता है। 'छ़ारान' शब्द की तुलना में 'ग्वारान' शब्द अधिक सार्थक और भावाभिव्यक्ति में समर्थ दिखाई देता है । चिन्तन की प्रक्रिया मानस के साथ जुड़ी है उसका बाह्य व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः समस्त वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार तय हो जाता है :–

ॲन्द्रिय आयस च़े ॲन्द्रिय गारान
ग्वारान आयस हिह्यन हिह्य
चुय अय नारान ! चुय अय नारान
चुय अय नारान ।। यिम कम विह्य् ।।

हिन्दी रूपान्तर :–

भीतर ही भीतर में तुझे ढूँढती रही
चिन्तन किया तो पाया सब सम रूप
तुम्ही हो नारायण, तुम्ही हो नारायण
जहाँ देखूँ वहाँ नारायण, तो यह रूप कैसे ?
(अपने भीतर तुझ को पाया – जहाँ देखूँ फिर तू ही तू।)

शब्दार्थ :–

नारान – नारायण, ईश्वर, विष्णु

गारान – कश्म0 गारुन ' तलाशना, ढूँढना, किसी के प्रेम में तड़पना, किसी की बहुत याद आना

ग्वारान – (अरबी) ग़ौर, चिन्तन, मनन, सोच विचार, ध्यान, ख्याल

विह्य् – सं0 वेश (बदला हुआ भेस), रूप, रंग, शक्ल, तमाशा, छल ।

ooo

یہ کیاہ آسِتھ یہ کیتھ رنگ گوم
بے رنگ کرِتھ گوم لگِ کمِ شاٹھے
تالو راز دانِ اَبکھ چھان پیوم
جان گوم زانیم پان پننے

यि क्या ऑसिथ यि क्युथ रंग गोम
बेरंग कॅरिथ गोम लगि कमि शाठय।
तालव राज़दानि अबख छान प्योम
जान गोम ज़ान्यम पान पनुनुय ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 161 पृ0 258

yih kyāh ösith yih kyuthu rang gōm
běrongu karith gōm laga kami shāṭhay
tālar-rāzaddāně abakh chān pyōm
jān gōm zāněm pān panunuy

ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 84 पृ0 98

यॅचुय ऑसिथ कुन्युक संग गोम
बेरंग कॅरिथ गोम लगु कमि शाठय
तालुरज़ि म्यानि अट्पन छ्यन प्योम
ज़ान गॅयम ज़ोनुम पान पनुनुय ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के चारों पदों में प्रक्षिप्त अंशों के कारण पाठ विकृत हो चुका है। कई विद्वान बन्धुओं ने इसे अपने संग्रहों में शामिल ही नहीं किया है। प्रस्तुत वाख लल्लेश्वरी के महत्त्वपूर्ण वाखों में से एक है।

प्रथम पद ' यि क्या ऑसिथ यि क्युथ रंग गोम ' – लगता है लल्लेश्वरी के पश्चात् शताब्दियाँ गुज़र जाने के बाद मौखिक परम्परा में यह पद–पाठ चल पड़ा और बाद में लिखित रूप में सामने आया। वास्तविक रूप में इस पद का शुद्ध पाठ है –

' यॅचय ऑसिथ कुन्युक संग गोम '

(मैं अनेक थी, नाना रूपाकारों में, एकत्व में हुई विलीन)

द्वितीय पद का पाठ शुद्ध है ।

तृतीय पद – ' तालव राज़दानि अबक छान प्योम '

यह पाठ बिल्कुल ध्यान देने योग्य है। इसका लल्लेश्वरी की साधना पद्धति एवं चिन्तन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मूल पाठ के ध्येय तथा अर्थ को समझने में असमर्थ होने के कारण इस प्रकार के विकृत पाठ की परम्परा चल पड़ी है।

इस पद का शुद्ध पाठ है –

'तालरज़ि म्यानि अटपन छ्यन प्योम'

सधवा कश्मीरी पण्डित महिला उस समय 'फिरन' के साथ विशेष प्रकार के शिरावस्त्र धारण करती थी जिसे 'तरंगु' कहते हैं । उनके दोनों कानों में विशेष प्रकार का आभूषण सुहाग चिह्न के रूप में 'डेजिहोर' होता है। यह आज भी सधवा स्त्रियों के द्वारा पहना जाता है। 'डेजिहोर' (देहजोर का विकृत रूप है) इस देहजोर के नीचे अटहोर लटकता रहता है। इस 'अटहोर' को बन्धन में रखने का दागा ' अटपन' कहलाता है। देहजोर के साथ जुड़ा एक और स्वर्णाभूषण पहनते थे जिसे 'तालुरज़' कहते

हैं। इसका दागा सिर के ऊपर से तरंगे में बन्द रहता था। यह ' तालरज़ ' देहजोर के साथ दागे में जुड़ी रहती थी। देहजोर के ऊपरी सिरे के साथ दागे में एक और स्वर्ण मनका (गुरिया, माला का दाना) रहता था जिसे 'तोख़्म फोल' कहते हैं। साथ लगे चित्र में आप ये सब विशिष्ट आभूषण तथा इन्हें धारण करने की विधि देख सकते हैं। वैवाहिक जीवन में इन आभूषणों के अपने विशिष्ट सांकेतिक अर्थ भी हैं। लल्लेश्वरी इस पद में कहती है कि मेरे स्वर्ण आभूषण 'तालरज़' का 'अटहोर' के साथ जो बन्धन का धागा था, वह टूट गया । यह बन्धन भौतिक जीवन का है, काम–वासना है, अपने पराये का है, लोभ, प्रीति और मोह का है ।

चतुर्थ पद – ' जान गोम ज़ान्यम पान पनॅनुई '

क्या अर्थ है इस पद का ? लगता है कि कोई कड़ी या तो टूट चुकी है या विकृत हुई है।

शद्ध पाठ है –

' ज़ान गॅयम ज़ोनुम पान पनुनुय '

(पहचान प्राप्त हुई और अपने आपको समझ लिया ।)

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार है –

यॅचुय ऑसिथ कुन्युक संग गोम
बेरंग कॅरिथ गोम लगु कमि शाठय
तालुरज़ि म्यानि अटुपन छ्यन प्योम
ज़ान गॅयम ज़ोनुम पान पनुनुय ।।

हिन्दी अनुवाद :–

अनेक थी और एकत्व में हुई लीन

कलपोश

ज़ूज

पूच़

अठ

तालुरज़

टंगुलोट

च़ॅट

त्रखुम फोल
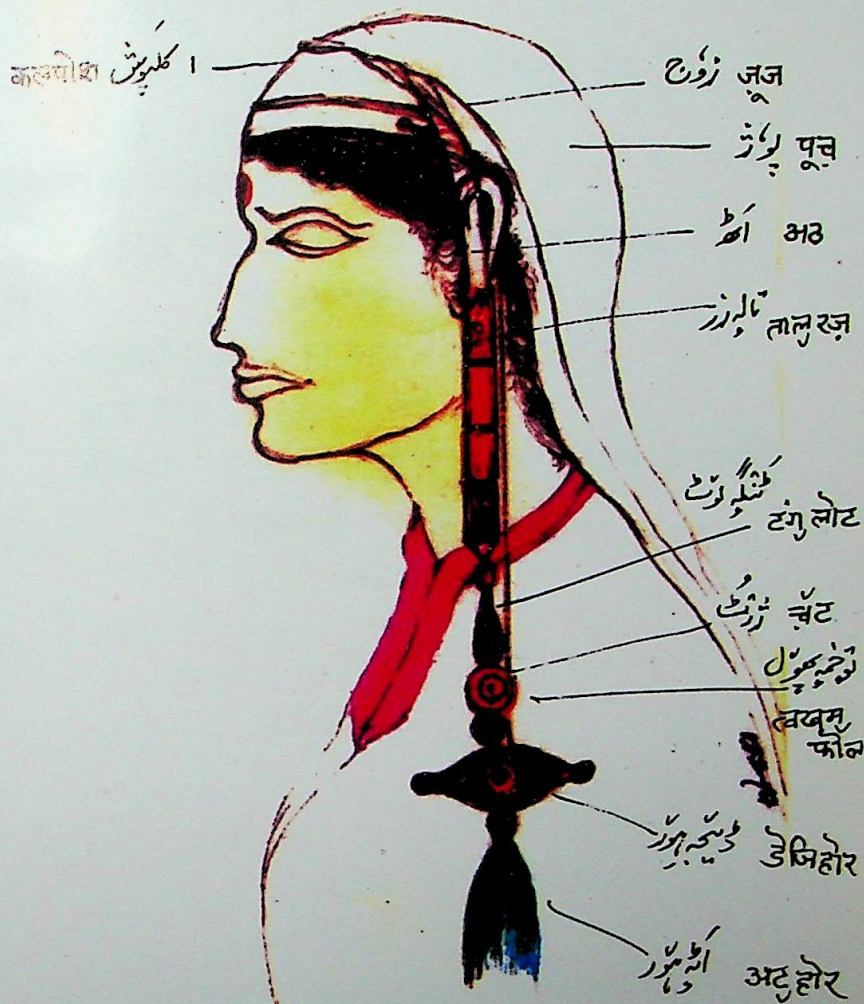
डेजिहोर

अटुहोर

रंग हीन करके गया, सामना होगा किस अवरोध से
शीश रज्जु के साथ जुड़ी भौतिक बन्धन रज्जु (अट्टपन)
कट गई
पहचान हुई तब हुआ प्राप्त आत्मज्ञान ।

शब्दार्थ :–

यॅचुय – अनेक, More than one (यॅच़ गई म्यॅच़)
कुन्युक – एकत्व बोध
शाठ – रुकावट, अवरोध
तालुरज़ – डेजिहोर के साथ विशेष बन्धन से जुड़ा एक स्वार्णाभूषण
अट्टपन – अटहोर को बन्धन में रखने का दागा
ज़ान गॅयम – पहचान हो गई ।
डॅजिहोर – (देहजोर)– एक विशिष्ट कर्ण आभूषण जो कश्मीरी सधवा स्त्री कानों में पहनती है।

०००

{62}

مٲرِتھ پانژھ بھوتھ تِم پھَل ہٮ۪نڈی
ژیتَن دانہ وکُر کھیتھ
تَدَے زانکھ پرم۔ پد ژٮ۪نڈی
ہِشی کھوش، کھور کوتہ نا کھیتھ

मॉरिथ पांच़ भूथ तिम फल हॅण्ड्य
च़ीतन दानु वखुर ख्यथ
तदय ज़ानख प्रम पद च़ॅण्ड्य
हिशी खोश खोर कोतु ना ख्यथ ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 60 पृ0 128

मारीत् पन्चभूत तें हण्डें
चेतुन् धान वाखुर् दित् ।
जानहा परमो पद् यिद् रण्डे
खशे खुर् हशेखुर् कित् ।।

–'ललवाक्याणि –ग्रियर्सन – (स्टेन बी0) वाख 17 पृ0 92

मॉरिथ पन्चभूत हॅण्डी
चे़तुन ध्यानु व्वखुर दिथ
ज़ान हा परमु पद यियी च़ण्डी
खॅ–शेखरुय ह्–शेखर क्यथ ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के द्वितीय पद पर विचार कीजिये –

' च़ीतन ध्यानु व्खुर ख्यथ '

दानु शब्द का प्रयोग विचारणीय है यह 'ध्यानु' अर्थात् ध्यान करने से, चिन्तन करने से, होना चाहिए । हम कश्मीरी में कभी भी 'वखुर ख्यत' नहीं कहते हैं अपितु 'वखुर दिथ' कहते हैं। अतः पद का पाठ शुद्ध रूप होगा – ' चे़तुॅन ध्यानु व्खुर दिथ' ।

तृतीय पद का पाठ भी विकृत है। स्टीन महोदय ने जो पाठ दिया है वह भी विचारणीय है। चेतना को जगा कर 'शिव–शक्ति' स्वरूप परमपद का बोध होगा, अतः –

' ज़ान / हा परमु पद यियी च़ण्डी '

चतुर्थ पद का पाठ तो बिल्कुल ही खण्डित हो चुका है ।

' हिशी खॊश खोर कोतु ना ख्यथ '

इस पद का कोई भी अर्थ नहीं है। स्टीन महोदय ने किसी हद तक बात को समझा है लेकिन सही रूप में अभिव्यक्त नहीं कर सके हैं।

यह वास्तव में शिव, शक्ति के अर्द्धनारीश्वर रूप की कल्पना है। 'खह्' स्वरूप वास्तव में शिव–शक्ति का समन्वित रूप है जिसमें दोनों एक साथ एक ही रूप में विद्यमान हैं जिसे अर्द्धनारीश्वर रूप कहते हैं। यह शिव–पार्वती का संयुक्त रूप है जिस में शिव के स्वरूप में आधा भाग पार्वती (शक्ति) का होता है। "प्रजा उत्पति की इच्छा से ब्रह्मा द्वारा घोर तप किये जाने पर शिव ने अपना यह रूप उत्पन्न किया जिसके वामांग में पार्वती के रूप में नारी का शरीर और दक्षिणांग में स्वयं शिव के रूप में पुरुष का शरीर था।"[1]

खॅह – खॅ + ह् – शिव + शक्ति

1. *हिन्दी कथा–कोष – हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, 1954 ई0 पृ0 8*

खँ – शेखर (शिरोभूषण) + हु शेखर

शिव + शक्ति

लल्लेश्वरी कहती है कि जब तुझे चंडी (शिव–शक्ति का क्लीं रूप) की पहचान होगी तब खँ – शेखर ही अर्थात् शिव ही ह् – शेखर अर्थात् शक्ति का अद्‌भुत रूप ग्रहण किये दिखाई देगा । इसलिए चतुर्थ पद का शुद्ध पाठ होगा –

' खँ – शेखर हुय – ह् – शेखर क्यथ ।'

संलग्न चित्र से बता स्पष्ट होती है ।

मॉरिथ पन्चभूतं हण्डी
चेतुन ध्यानु व्खुर दिथ
ज़ान हा परमु पद यियी चण्डी
खँ–शेखरय हु–शेखर क्यथ ।।

हिन्दी अनुवाद :–

' पंचभूतों से पोषित भेढ़ों को मारकर
चेतना ध्यान स्वरूप को जगाकर
चण्ड़ी (शिव शक्ति) के परमपद का बोध होगा
शिव ही शक्ति का रूप धारण किये अद्‌भुत है।'

शब्दार्थ :–

पंचमूत – पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश – ये पाँच तत्त्व जिनके साथ पाँच तन्मात्र – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द सम्बन्धित हैं और जिनके कारण काम,

विशुद्धाख्यचक्र
(अर्थात्)
षोडशदल पद्म
CAROTID PLEXUS
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान
सदाशिव
शाकिनी
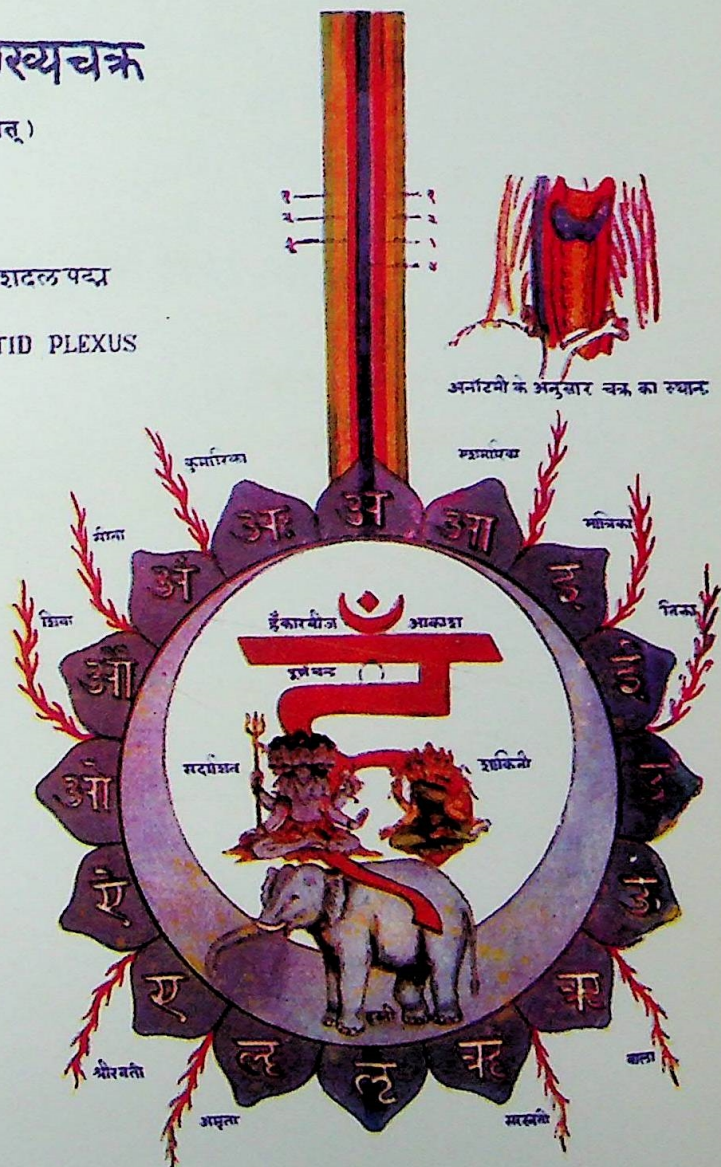
क्रोध, लोभ, मद, मोह पाँच भौतिक पाश जीव को पर–वश कर देते हैं।

हण्डी – भेड़

ज़ान हा – बोध होगा

चण्डी – शिव–शक्ति क्लीं रूप में

खँ – शेखर – शिव

हु – शेखर – शक्ति

क्यथ – कैसा (विचित्र, अद्‌भुत)

ooo

مد پیوم سیندی زَلن ییتھ
رٔنگن لیلٕمی کیَم کیٚژ
کیٚتھ کھیتَم منٔشِ ماسکی نٕلی
سوے لوٗل تہٕ گوو مے کیا

मद प्योम स्यंद्य् ज़लन यॅयुत
रंगन लीलॅम्य् क्यम कॅयचु।
क्यत खेयम मनशि मामसक्य् नॅल्यु
स्वय ब्व लल त ग्वव मे क्या ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल वाख 116 पृ0 194

मद् पिवूम् सिन्धु जलनि यातो
रङ्गन् लीलमि कीयम ।। काच ।।
कैती खियम् ।। मनुषमांसकी नली
सयी भु लल्ल ता गो मि क्यात् ।।

–'ललवाक्याणि –ग्रियर्सन – (स्टेन बी0) वाख 42–43 पृ0 96

मद् प्यवो सोंधि ज़ल योतो
रंगव लीलक्यव द्यन क्योहो राथ
कूत्य खेयि अॅम्य् मनुष्य, मामसुकि नॉली
सुयी ब्व लल तय तव ग्वण किवा ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख प्रोफ़ेसर जयलाल कौल और स्टीन महोदय ने ही अपनी पुस्तकों में शामिल किया है कि :

' मैं ने लाखों स्वाँग रचाये ' सिन्धु जल के रूप में मैंने पी खूब शराब ' तथा ' इन्सान का गोश्त भी खाया मैंने कितनी बार ' पदों का अर्थ लिखते समय इस प्रकार की अर्थ प्रतीति वास्तव में भ्रामक है और ऐसा अशुद्ध पाठ के कारण ही हुआ है ।

प्रथम पद का सम्बन्ध मनुष्य के एक भीतरी विकार मद (अहं, गर्व, उन्माद – अपनी सत्ता का बोध) से है। लल्लेश्वरी कहती है कि असीम सिन्धु जल के समान मद ने ग्रस लिया ? जाने कहाँ से 'सिन्धु जल के रूप में मैं ने पी ली ख़ूब शराब' अर्थ निकाला गया है ।

द्वितीय पद में 'रंगन लीलॅम्य्' के बदले – 'रंगव – लीलक्यौ ' होना चाहिए जो जीवन व्यवहार की रंगा–रंग लीलाओं से जुड़ा शब्द–प्रयोग है।

तृतीय पद में ' –' मनुष्य मामसक्य नॅलयु' के बदले ' मनुष्य मामसकि नॉली' शब्द–प्रयोग अधिक संगत और अर्थ अभिव्यक्ति में समर्थ है।

'इंसान का गोश्त भी खाया मैंने कितनी बार' – अर्थ बिल्कुल अशुद्ध, हास्यास्पद एवं भ्रामक है। लल्ला कहना चाहती है कि 'कितनो को खा लिया इस मनुष्य ने मांसाहार के रूप में जैसे भेड, बकरी, हिरण, ऊँट, मछली आदि । वही मैं लल हूँ, तुम लोगों में कैसे (विचित्र) गुण हैं।

प्रस्तुत वाख के अर्थ के साथ बहुत अन्याय हुआ है और पाठ अशुद्धि इसका मूल कारण है। सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

मद् प्यवो सेंधि ज़ल योतो
रंगव लीलक्यव द्यन क्योहो राथ

कुत्य खेयि ॲम्य् मनुष्य, मामसुकि नॉली
सुयी ब्व लल तय तव ग्वण किवा ।।

हिन्दी अनुवाद –

असीम सिन्धु जल के समान मद ने ग्रस लिया
दिन रात के जीवन व्यवहार की रंगारंग लीलाओं से
कितनों को खा लिया इस मनुष्य ने मांसाहार रूप में
वही मैं लल्ल हूँ, आपके गुण कैसे ?

शब्दार्थ :–

मद– मस्ती, गर्व, अहंकार
स्यन्द–ज़ल – असीम सिन्धु जल समान
प्यवो – ग्रस्त हुई, पड़ गई
लीलक्यव – सांसारिक लीलाओं का
मामसुकि नॉली – मांसाहार के रूप में (जैसे भेड़, बकरी, मछली, मुर्गा, हिरण ऊँट आदि)
सुयी – वही थीं।
तव – तुम्हारे
किवा – कैसे ।

ooo

{ 64 }

یوٚسے شیٖل پیٖٹھس تہٕ پٹس
سوے شیٖل چھے پرتھوِ وون دیٖش
سوے شیٖل شوٗبہٕ وٕنِس گرٹس
شِو چھے کروٗٹھ تہٕ ژین ووپدیٖش

य्‌वसय शेल पीठस तु पटस
स्वय शेल छय प्रथुवुन दीश ।
स्वय शेल शूबुवुनिस ग्रटस
शिव छुय क्रूठ तु चे़न व्वपदीश ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल –वाख 78 पृ० 152

यसै शिल् पीठस । ता वट्टस्
सयी शिल् पृथिवानीस् देशा ।।
सै शिल् शोमवानी ग्रट्टस ।
शिव छ्योयी कष्टो त चिन् ।। उपदेश ।।

–'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन (स्टेन बीं०) वाख 33–43 पृ० 71

य्‌वसय शेल पीठस तु पटस
स्वय शेल छय उत्तमो ईश
स्वय शेल शूब छय पॉनी ग्रटस
शिव छुय किवइष्टो, चे़न व्वपदीश ।।

– लेखिका

वाख का दूसरा पद विचारणीय है । 'सोय शेल छय प्रथवुन दीश' ' 'प्रथवुन दीश' शब्द प्रयोग अर्थ की दृष्टि से सन्देहास्पद है। क्या अर्थ है इस शब्द प्रयोग का ? यह प्रयोग 'प्रथवुन दीश ' नहीं है अपितु 'उत्तमो ईश' है।

जों शिला पीठ और पट में है वही शिला ईश्वर स्वरूप में उत्तम रूप धारण करती है। श्रेष्ठ बन जाती है। (शिवलिंग का रूप धारण कर पूजनीय बन जाती है।)

तृतीय पद – ' स्वय शेल शूबवनिस ग्रटस' । लगता है कहीं कोई प्रयोग इसमें या तो प्रक्षिप्त है या अर्थ अभिव्यक्ति में असमर्थ । यह वास्तव में 'स्वय शेल शूब छय पॉनी ग्रटस' अर्थात् वही शिला पन–चक्की की शोभा है।

चतुर्थ पद में 'शिव छुय क्रूठ' कहने की लल्लेश्वरी को क्या आवश्यकता थी । शिव क्रूठ नहीं है, यह हमारी अपनी कमज़ोरी है, अपूर्णता है, अज्ञान है इसमें शिव पर आक्षेप लगाने की आवश्यकता है। शिव क्रूठ (कठोर, मुश्किल, निर्दयी) नहीं है। अतः 'क्रूठ' शब्द का प्रयोग सन्देहास्पद बन जाता है । मूलतः यह शब्द है – किम् + इष्टो (कैसा इष्ट है) ' किम् इष्टो का ही कश्मीरी में ' किव इष्टो' शब्द बन गया है। लल्लेश्वरी कहती है कि 'शिव कैसा इष्ट देव है', इस उपदेश को जान ले, चेत ले, विचार कर ले, समझ ले, महसूस कर ले । सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

य्वसय शेल पीठस तु पटस
स्वय शेल छय उत्तमो ईश
स्वय शेल शूब छय पॉनी ग्रटस
शिव छुय किवइष्टो, चे़न व्पदीश ।।

हिन्दी अनुवाद –

जो शिला पीठ और पट में है
वही शिला है उत्तम ईश
वही शिला पन–चक्की की मूलाधार है
शिव कैसे इष्ट हैं – चेत ले उपदेश ।

शब्दार्थ :–

शिला – पत्थर

पीठ – चौकी, आसन, मूर्ति आदि का आधार, सिंहासन

पट – छाजन, छज, (देवार, द्वस)

उत्तमो ईश – उत्तम ईश्वर, शिव, स्वामी, मालिक

चे़न उपदेश – उपदेश चेत ले (समझ ले, महसूस कर, जान ले)

किव इष्टो – सं० – किम् + इष्ट

कश्म० – किव इष्ट

कश्म० – किव इष्टो ।

०००

{ 65 }

تنتھر گلِ تاے منتھر موژے
منتھر گوٚل تاے موٚتے ژیتھ
ژیتھ گوٚل تاے کیہہ تِہ نا کنے
شونیس شونیاہ میلِتھ گوو

तंथुर गलि तॉय मंथुर म्वचे़
मंथर गोल तॉय मोतुय च़्यथ
च़्यथ गोल तॉय़ कें‍ह ति ना कुने
शून्यस शुन्याह मीलिथ ग्वव ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 89 पृ0 164

तन्त्र गलि तय मन्त्र म्वचे़
मन्त्र गोल तय मोतुय च़्यथ
च़्यथ गोल तय केंहति नु कुने
शून्यस शून्याह मीलिथ गौ ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 41–43 पृ0 96

तन्त्र गलि ता मन्त्र साती
मन्त्र गलि ता मुचि़ श्रून्या ।।
शूल (श्रून्य्) गलि ता आमय् । मुचि
एहुय् उपदेश चिञा ।।

–'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन – (स्टेन बी0) वाखं 26 पृ0 33

तंत्र गोल तय मंत्र म्वचे़
मंत्र गोल तय म्वते सपुन्य्[1]
सपुन्य् गॅल्य् तय शुन्या म्वते ।
य्वहय व्वपदीश चे़नता ।।

– लेखिका

वाख का द्वितीय पद विचारणीय है – मंत्र गोल तॉय मोतुय च़्यथ' तंत्र और मंत्र दोनों की समाप्ति पर चित्त शेष नहीं अपितु सहज ज्ञान, अन्तर्ज्ञान अथवा़ अन्तर्दृष्टि शेष रहती है। जिसे अंग्रेज़ी भाषा में intuition कहते हैं और कश्मीरी भाषा में स्वप्न । यह चित्त की बात नहीं है, बोध (आत्म बोध) की बात है। स्टीन महोदय ने 'चित्त' शब्द का प्रयोग न करके श्रूल् शब्द का प्रयोंग किया है जो वास्तव में आत्म–बोध के बाद की अवस्था है । अतः पहली अवस्था तंत्र (बाह्य साधना, बाह्य पूजा दूसरी अवस्था मंत्र (जप, पाठ, मंत्र विद्या) आदि की है। वह शब्द या शब्द समूह जिससे किसी देवता की सिद्धि या अलौकिक शक्ति प्राप्त हो, मंत्र कहलाता है। तीसरी अवस्था आत्मबोध की है और अन्तिम अवस्था शून्याभास (निराकार की पहचान) की है ।

तीसरे पद में 'च़्यथ गोल तॉय केंह ति ना कुने ' चित्त की समाप्ति नहीं अपितु intiuition आत्मबोध की समाप्ति की बात लल्लेश्वरी ने कही है। जब जीव का निजी अस्तित्व परमतत्त्व में विलीन हो जाता है तो शेष केवल शून्य रह जाता है। अतः तीसरे पद का शुद्ध पाठ होगा – 'सपुन्य गॅल्य् तय शून्या म्वतें ।

चतुर्थ पद के सही रूप की ओर संकेत वास्तव में स्टेन महोदय

ने किया है । वह लिखते हैं – 'एहुय उपदेश चित्रा' । –शून्यस शुन्या मीलिथ गौ' तो बिल्कुल अप्रासंगिक और भ्रामक है। लल्लेश्वरी के कई वाखों की चतुर्थ पद में यही पाठ जोड़ कर बात समाप्त कर दी गई है जो वास्तव में न्याय संगत नहीं है।

इस वाख के चतुर्थ पद का सही पाठ है – 'एहुय व्वपदीश चे़नता' – यही उपदेश चेत ले ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत हो जाता है–

तंत्र गॊल तय मंत्र म्वचे़
मंत्र गॊल तय म्वते सपुन्य् [1]
सपुन्य् गॅल्य् तय शुन्या म्वते ।
य्वहय व्वपदीश चे़नता ।।

हिन्दी अनुवाद :–

'बाह्य पूजा की इति पर शेष रह गया मंत्र
मंत्र की इति पर शेष रह गया आत्मबोध
आत्मबोध की समाप्ति पर शेष रह गया शून्य
चेत ले उपदेश को ।'

शब्दार्थ :–

तंत्र – बाह्य पूजा पाठ, शिव शक्ति की पूजा अनुष्ठान और अभिचार आदि के विधान

मंत्र – किसी देवता या अलौकिक शक्ति की सिद्धि के हेतु विशिष्ट शब्दोच्चार, मंत्र विद्या

---

1. सपुन्य् – *intuitive*, वजदॉनी, कुफियत, महवियत, कशुफ़

स्वपुन – intuition] अन्तर्ज्ञान, अन्तःपूजा, अन्तर्बोध,
सहज बुद्धि, अन्तर्दृष्टि। (जो अवस्था नन्दबॅब की थी)

शून्य – निराकार ब्रह्म

चे़नता – समझ ले, पहचान ले, चेत ले।

म्वते – (म्वचे़) शेष रह जायेगा ।

000

ژیتھ امر پتھِ تھوٗوی زے
تہٕ تراوِتھ لگو زوٗڑے
تتہٕ چہٕ نوشکِ زے پندری زے
دودِ شُر تہٕ کوچھِ نو موٗڑے

च़्यथ अमर पथि थॅव्युज़े
ति त्रॉविथ लगो ज़ूड़े
तति च़ नोशिक ज़े सॅन्दऱ्य ज़े
द्वदु शुर ति क्वछि नो मूड़े ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल– वाख 53 पृ0 120

च़्यथ अमरपथि थॉविज़े
ति त्रॉविथ लगिय ज़ूरे
तति च़ नो शींक्यज़ि संदॉर्यज़े
द्वदशुर ति क्वछ नो मूरे ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 79 पृ0 164

चित्ता अमरपथि थविज़ि
ते चावींत ता लगिय् ।। जूळि
तत्या चू कड्ंगत् सन्धरिजि
दद्वो शोळो ता कुछ्यि ता ना मूळि ।।

–'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन – (स्टेन बी0) वाख 28 पृ0 87

च़्यथ अमर पथि थॉव्यज़े
ती त्रॉविथ लगी ज़ूरे
तति चु नो कांख्यज़ि सन्दॉरज़ि ।
द्वदु शुर यिथु ब्वछि–नो मूरे ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का तृतीय पद विचारणीय है – 'तति च़ नो शिकिज़ि सॅन्दॅरज़े' इसमें 'शिकिजि' शब्द व्यर्थ है, लगता है कि यह प्रक्षिप्त है। यह वास्तव में कॉख्यज़ि (आकांक्षा – अपेक्षा, चाह, इच्छा) कश्मीरी – कॉछुन, शब्द का विकसित रूप है।

संस्कृत 'कांक्षा' (इच्छा, चाह, झुकाव, प्रवृत्ति) शब्द से ही कश्मीरी में 'कांख्या' शब्द का विकास हुआ है।

तृतीय पद में ही 'सुन्दरस्य ज़े ' के बदले 'सन्दॉरज़ि' शब्द प्रयोग अधिक उपयुक्त और अर्थ अभिव्यक्ति में समर्थ है ।

'तति चॅ़ नो कॉख्यज़ि, सन्दॉरज़ि' – वहाँ यह इच्छा नहीं रखना कि मैं सँभल जाऊंगा, लाभान्वित हूं गा । यह वास्तव में कश्मीरी शब्द –सन्दारुन' का ही विकसित रूप है।

चतुर्थ पद में ' द्वद शुर ति कोछि नो मूडे' पाठ भी सही नहीं है। यह 'क्वछि नो मूरे' नहीं है अपितु 'ब्वछि नो मूरे' शब्द प्रयोग है और पूरे पद का अर्थ सन्दर्भ है कि –दूध पीता शिशु भी क्षुधा ग्रस्त क़रार नहीं करता, तनिक भी शान्त नहीं होता है ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है –

च़्यथ अमर पथि थॉव्यज़े
ती त्रॉविथ लगी ज़ूरे

तति चु नो काँख्यज़ि, सन्दॉरज़ि ।
द्वदु शुर यिथु ब्वछि–नो मूरे ।।

हिन्दी रूपान्तर :–

चित्त लगा दे अमरत्व के पथ पर
उस पथ को छोड़ फंस जायेगा कपटमय बन्धन में
(उस भौतिक पथ पर) आशा नहीं रखना यहाँ सम्भलने की
जैसे दूध पीता शिशु क्षुधाग्रस्त क़रार नहीं करता।'

शब्दार्थ :–

च़्यथ – चित्त
अमरपथ – अमरत्व का मार्ग
ज़ूरे – सांसारिक बन्धन, हाव–भाव, छल कपट, फ़रेब, वंश प्रतिष्ठा
काँख्यज़ि – आकांक्षा करना
सन्दॉरज़ि – सम्भल जाऊंगा ।
मूरे (मूरुन) – ठहरना, ठहराव, करार करना, तनिक शान्त होना ।

०००

{ 67 }

نابھستانہٕ چھےٚ پرٕکرتھ زلہٕ وُنی
ہڈِس تام یِتہٕ پرٛان وَتہٕ گوٚت
برٛہمانڈس پیٹھ سۭتی ناڑِ وَہوُنی
ہۄ تۄ ژرُن ، ہاہ تۄ توٚت

नाभिस्तानु छय प्रकरथ ज़लु वुनी
हडिस ताम यति प्रान वतु गोत
ब्रह्माण्डस प्यठ सुत्य नाडि वहवुनी
हू तवु तुरुन हाह तवु तोत ।।

—'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 96 पृ० 172

नाभिस्थान् ।। छियी प्रकत् जलवन्यी
हीळीस् ताँ छ्योयी ईसुर् सुतो
मानसमंडल् ।। नद् वुहुवन्यी
हूह् तव तूळनो हाह ।। तव ततो ।।

—'ललवाक्याणि ग्रियर्सन – (स्टेन बी०) वाख 45 पृ० 74

नाबिस्थानस छय प्रक्रथ ज़लुवुनी
ब्रह्मास्थानस शिशरुन म्वख
ब्रह्माण्डस छय नद वहुवनी
तवय तुरुण हूह तु हाह गव तोत ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 68 पृ० 147

नॉबिस्थानस छय प्रकुरथ दाहवुनी
हिडिस ताम येति प्राणु वतु गोत
मानस मंडलु सत् नद वहुवुनी ।
हूह तवु तुरुन हाह तवु तोत ।।

– लेखिका

वाख के प्रथम पद पर ध्यान दीजिए । इस पद में 'ज़लवनी' शब्द का प्रयोग सन्देहास्पद है । यद्यपि अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह शब्द 'दाहवुनी' होना चाहिए जिसका सम्बन्ध 'दाह' शब्द के साथ है। कश्मीरी में दाह – दज़वुन, वहीं अर्थ 'दाहवुनी' शब्द का भी है।

द्वितीय पद में 'ब्रह्मस्थानस शिशिरुन म्वख' प्रक्षिप्त प्रयोग है। पद का सही पाठ है – 'हिडस ताम यति प्राण वत् गोत ' अर्थात् कंठकूप तक प्रश्वास–निश्वास की क्रिया निरन्तर चल रही है।

तृतीय पद में 'ब्रह्माण्डस' शब्द का प्रयोग प्रक्षिप्त है । ग्रियर्सन महोदय ने इस शब्द के बदले सही शब्द का प्रयोग किया है और शब्द है – 'मानस मंडल ' । ब्रह्माण्ड शब्द सम्पूर्ण विश्व और जीव के सन्दर्भ में कपाल या खोपड़ी का वाचक है और 'मानस' शब्द मन, चित्त अथवा मानसरोवर का बोधक है जो कैलाश में शोभायमान है। कुंडलिनी योग के सातवें प्रदेश को, जो शीर्ष में विद्यमान हैं, कैलाश कहते हैं जहाँ मानसरोवर का होना स्वाभाविक है । मानसमंडल से ही सत्–नद प्रवाहित हो सकती है जिससे शरीर का रोम–रोम सिक्त हो उठता है ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है :–

रँ
मणिपूरकचक्र
(अर्थात्)
दशदलपद्म
EPIGASTRIC PLEXUS
अनॉटमी के अनुसार चक्र का स्थान
१ सुषुम्ना
२ वज्रा
३ चित्रणी
४ ब्रम्हनाड़ी
तारा
तारका
अतीता
माधवी
तारा
तारका
डँ
ढँ
णँ
तँ
थँ
दँ
धँ
नँ
पँ
फँ
इल्लिका
युक्ता
युक्ते
कार्ली
इन्ना
विजोनिका
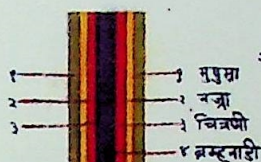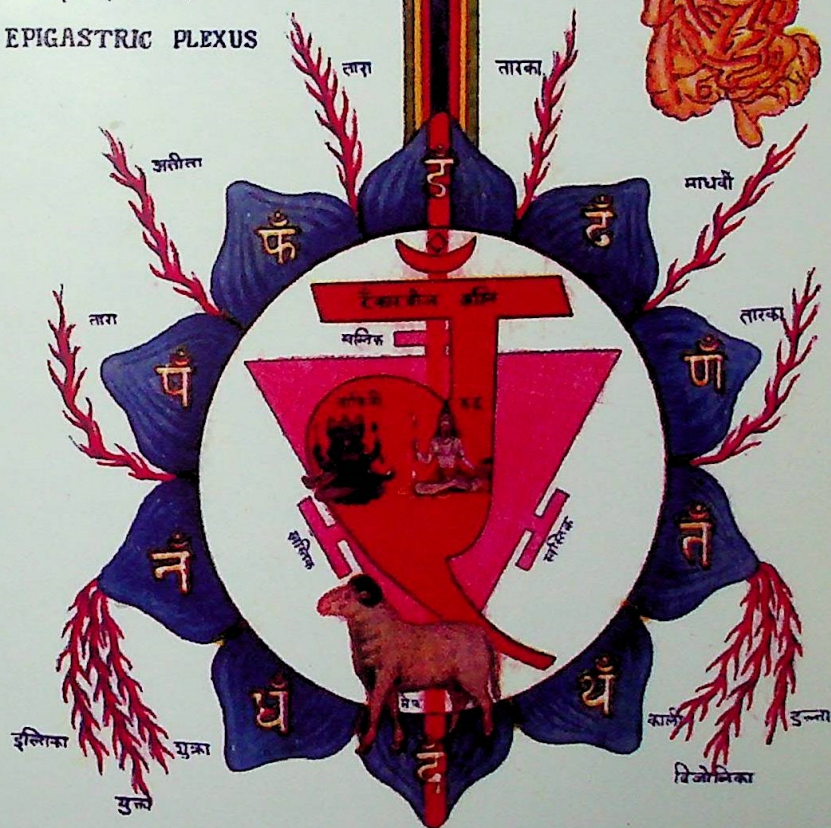
नॉबिस्थानस छय प्रक्रथ दाहवुनी
हिडिस ताम येति प्राणु वतु गोत
मानस मंडलु सत् नद वहवुनी ।
हूह तवु तुरुन हाह तवु तोत ।।

हिन्दी रूपान्तर –

नाभिस्थान की प्रकृति है ज्वलायुक्त
कंठ कूप तक श्वास क्रिया निरन्तर चलती
मानसमंडल में सत्नद प्रवाहित है सवेग
निश्वास का एक रूप है तप्त दूजा शीतल (हूह)

शब्दार्थ :–

नाभिस्थान – नाभि; (The naval) नाभिमूल
दाहवुनी – दज़वनी
हिडिस – कंठ कूप
वतुगोत – लगातार चलने वाला (प्रश्वास–निश्वास की अनवरत क्रिया)
तवु – उस कारण
मानस मंडल – शीर्ष, ब्रह्मांड
सत् नद – अमृत (आनन्द) नद
हाह – निश्वास छोड़ने की एक विधा (तप्त)
हूह – निश्वास छोड़ने की दूसरी क्रिया (शीतल)

ooo

{ 68 }

مارکھ مار بُوتھ کام کرُود لوب
نتہ کان بٔرتھ مارنے پان
منے کھین دِکھ سو وِچار شم
وِشے تہنٛد کیاہ کیتھ دژو زان

मारुख मारु बूथ काम क्रूद लूब
नतु कान बॅरिथ मारुनय पान ।
मने ख्यन दिख स्व व्यच़ार शम,
विषय तिहुन्द क्याह क्यथ द्रुव ज़ान ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 37 पृ० 102

मारुक् मारमूत पाराशुक्
कान् भरीत् मारिनिय्
मनय् खिन्न दीस्
अल्पें आसुव (–) हुखिनिस्तश्र कव दीय् ।।

–'ललवाक्याणि – ग्रियर्सन – (स्टेन बी०) वाख 71 पृ० 87

मारुख मारुबूथ काम–क्रूद–लूब
नतु कारण ब'रिथ मारुनय पान
मनय' ख्यन दिख स्वव्यच़ारु शम्
विषय तिहुँद क्याह–क्युथ दोर ज़ान ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 82 पृ० 167

मारुख मारुभूत पॉर्यनाशिक
नतु कान बॅरिथ मारुनय
मनय ख्यन दिख ओलुपन ओम्क्य ।
अद् होखिनिस तेशर कवु दिय ।।

– लेखिका

वाख की प्रथम पंक्ति पर विचार करने की आवश्यकता है । मारुबूथ (नाश करने वाले) केवल काम, क्रोध और लोभ ही नहीं हैं अपितु कई और तत्त्व एवं भौतिक आकर्षण के पाश हैं। 'काम–क्रूद' लूब' ये शब्द प्रक्षिप्त हैं, बाद में जुड़े हुए हैं। स्टेन महोदय ने मूल शब्द की ओर संकेत अवश्य किया है – ' पाराशुक्' जो वास्तव में ' पॉर्य नाशिक' अर्थात् पहचान को नष्ट करने वाले तत्त्व हैं। द्वितीय पद में अन्तिम शब्द 'पान' अनावश्यक है। 'नत् कान बरिथ मार्नय' पद अपने में पूर्ण है इस पद के साथ अन्त में 'पान' शब्द लगाने की आवश्यकता नहीं है ।

तृतीय पद में ' स्वव्यचार शम' प्रक्षिप्त है। बहुत विचार करने के बाद इस शब्द खण्ड को पद के साथ जोड़ दिया गया है। स्टेन महोदय ने एक बार फिर मूल शब्द की ओर संकेत किया है – ' अलपें आसुव' (– – –) यह वास्तव में प्रयोग है – ' ओलुपन ओम्क्य' अर्थात् ओम् मंत्र रूपी श्वास कौर '

चतुर्थ पद तो पूरा का पूरा प्रक्षिप्त है – ' विषय तिहुन्द क्या क्युथ द्रुव जान' । द्रुव का कहीं–कहीं दोर भी हो गया है। स्टेन महोदय ने इस पद के मूल शब्द प्रयोग की ओर अवश्य संकेत किया है – ' हुखि निस्तश्र कव दीय' यह होना चाहिए ' अद् होखिनिस तेशर कव दिय' अतः सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है :–

मारुख मारॅभूत पॉर्यनाशिक
नतु कान बॅरिथ मारुनय
मनय ख्यन दिख ओलुपन ओम्क्य ।
अद् होखिनिस तेशर कवु दिय ।।

हिन्दी रूपान्तर –

पहचान को नष्ट करने वाले मारभूतों (मारने वाले शत्रु) को मारो
नहीं तो बाण चलाकर नष्ट कर देंगे
मन से ओम् मंत्र रूपी श्वास–कौर खाने को दे
फिर शुष्क पिंड में शक्ति (इच्छा रूपी) कहाँ प्राप्त होगी ।

शब्दार्थ :–

मार्भूत – नाश करने वाले
पॉर्यनाशिक – पहचान को नष्ट करने वाले
कान – तीर, बाण
मनय – मन से
ओलुपन – श्वास के कौर
ओम्क्य – ओम् मन्त्र के
तेशर – शक्ति, प्राण, इच्छा
होखिनिस – शुष्क, सूखा ।

०००

{ 69 }

اومکار ییلِ لَیہِ اونُم
وُہۍ کوٗرُم پَنُنٛ پان
شےٚ ووتُھ ترٲوِتھ سَتھ مارگ رۄٹُم
ییلِ لَلہٕ بو واتس پرٛکاشتھان

ओम्कार यलि लयि ओनुम
वुह्य कोरुम पनुन पान ।
शे वोत त्रॉविथ सथ मार्ग रोटुम
येलि लल ब्व वॉचुस प्रकाशस्थान ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 94 पृ0 170

Ōm-kūr yĕli layĕ onum
wuhĭ korum panun^{u} pān
sh^{ĕ}wot^{u} trövith ta sath mārg roṭum
tĕli Lal bŏh wöṣ^{ü}s prakāshĕ-sthān

ग्रियर्सन – ललवाक्याणि – वाख 82 पृ0 97

ऊंकार यॅलि लयि ओनुम
वुही कोरूम पनुन पान्
शुवोत त्रॉविथ सथमाग्र रोटुम
त्यॅलि लल बोह वॉचुस प्रकाशस्थान ।।

–'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo वाख 53 पृ0 117

ओम्‌कार येलि लयि ऑनुम
वुह्य कोरुम पनुन पान
शाहवोत त्रॉविथ सथ मार्ग रोटुम
तेलि लल ब्व वॉचुस प्रकाशस्थान ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के तीसरे पद के प्रथम शब्द पर विचार करने की आवश्यकता है – शब्द है – 'शेवोत / शुवोत ।

विद्वान बन्धुओं ने इसे शैव शास्त्र के आणव, उपाय और शाम्भव उपाय से जोड दिया और शरीर शुद्धि तथा परम उच्चावस्था पर आत्म चिन्तन की पराकाष्ठा का सूचक माना। कहीं–कहीं इसे कुंडलिनी योग के प्रथम छः चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनहत, विशुद्धाख्य, त्रिकुटी) से जोड़ कर सातवें चक्र (सहस्रार) के परमानन्द का वाचक माना।

मेरा विचार है कि यह 'शेवोत' शब्द नहीं है अपितु 'शाह वोत' शब्द है जिसका सम्बन्ध प्राणायाम योग की द्वितीय अवस्था के साथ है। प्राणायाम श्वास–प्रश्वास साधना के तीन आयाम होते हैं – पूरक, कुम्भक, रेचक ।

द्वितीय अवस्था में प्रश्वास भीतर खींच कर तथा शरीर की शिराओं में पहुँचा कर रोक लिया जाता है। सफल योगी जन इस अवस्था में उतने समय तक रह सकते हैं जिसकी सामान्य मानव कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। सामान्यतः जीव बिना श्वास लिये अल्प समय तक भी नहीं रह सकता है परन्तु हठयोगी सिद्ध साधक इस स्थिति में रहकर बहुत आगे निकल जाता है और जीवनदायिनी श्वास प्रक्रिया पर विराम लगा कर अद्‌भुत आनन्द लोक में लय हो जाता है। यह उसके वर्षों की निरन्तर साधना और अभ्यास का फल होता है। इसी लिये लल्लेश्वरी कहती है कि

श्वास–निश्वास मार्ग पर रोक लगा कर (कुम्भक द्वारा) मैं आनन्द लोक में विचरण करने लगी।

सम्पूर्ण वाख में 'शे वोत' के बदले 'शाह वोत' शब्द प्रयोग से अर्थ में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। इस शब्द का योगशास्त्र के आणव उपाय या शाम्भव उपास से सम्बन्ध नहीं है।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार नियत हो जाता है –

ओम्कार यॆलि लयि ऒनुम
वुह्य कॊरुम पनुन पान
शाहवॊत त्रॉविथ सथमार्ग रॊटुम
तॆलि लल ब्व वॉचुस प्रकाशस्थान

हिन्दी अनुवाद :–

जब ओ३म्कार को मैं ने आत्मसात किया
तो अपने आपको दहकता शोला बनाया
श्वास प्रश्वास को नियंत्रित (कुम्भक द्वारा) सत्पथ
का किया अनुसरण
तब लल, मैं पहुँची प्रकाशस्थान ।।

शब्दार्थ :–

वुह्य – तप्त करना, अंगारा बन जाना
शाह वोत – प्रश्वास – निश्वास पथ
सथ मार्ग – तुरीय अवस्था, सन्मार्ग
प्रक़ाशस्थान – परमानन्द अवस्था
ओ३म्कार – सत्यं + शिवम् + सुन्दरम्, सचिदानन्द, प्रणव
लयि अनुम – लय हो जाना, अपनी ओर आकर्षित करना, लीन होने की अवस्था ।

○○○

شِوا ، کیشوا زِن وا

کمَ لزِ ناتھ نام دٲرِن یُوہ

مےٚ اَبلِ کٲسیتن بوٚرُز

سُوا ، سُوا ، سُوا ، سُ

शिव् वा, कीशवा ज़िनवा
कम, लज़ु नाथ नाम दॉरिन युह
में अबलि कॉस्यतन बवु रूज़
सुंवा, सुवा, सुवा, सु ।।

–'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल – वाख 71 पृ0 142

शिव् वा केशव् जिन्वा कमलुज़
नाथा नाव् धारिनिय यी यो ।
सो मि अबलि कासीतन् भवरुज्,
सोवा सोवा सोवा सो ।।

–'ललवाक्याणी' ग्रियर्सन स्टेन बी वाख 2, पृ0 31

शिवा वा कीशव वा जिनवा
कमुलज़ुनाथ नाम दॉरिन युह
म्यॅ अबलि कॉस्यतन बवुरोज़
सु वा सु वा सु वा सुह ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 24 पृ0 12

शिवा केशवा या ज़ि
कमलज़नाथ नामधारि युहु
मे अबलि कॉस्य्तन भव रॅज़
सु हहा सुहहा सु शिवाह ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के मूल पाठ में प्रक्षिप्त अंश जुड़ जाने के कारण 'जिनवा' का प्रयोग करके वाख के कथ्य को गौतम बुद्ध अथवा जैन तीर्थंकर के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है।

शिव और शक्ति के आध्यात्मिक रहस्यों पर प्रकाश डालते समय लल्लेश्वरी ने कहीं भी बौद्ध या जैन सम्प्रदायों के विषय में अपनी राय देने का प्रयास नहीं किया है।

यह शब्द प्रयोग 'जिनवा' नहीं है अपितु सरल व्यावहारिक कश्मीरी भाषा का 'याज़ि ' शब्द प्रयोग है जिसका अर्थ है 'अथवा' ' या तो ' ।

वाख के अन्तिम पद में 'सुवा' शब्द प्रयोग भी विश्वसनीय नहीं लगता 'सुवा' – **सुग्गा, तोता** ।

यह वास्तव में 'सुवा' के बदले 'सुहहा' शब्द प्रयोग है जिसका अर्थ है – चाहे वह एक ।

वाख के तृतीय पद में 'बव रूज़' बव् रोज़ शब्द का प्रयोग भी प्रक्षिप्त लगता है। यह वास्तव में 'बव रॅज़' शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है संसार में आना–जाना अथवा जन्म–मरण का चक्कर।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो

जाता है:

शिवा कीशवा या ज़ि
कमलज़नाथ नामधारि युहु
मे अबलि कॉस्य्तन भव रॅंज़
सुहहा सुहहा सु शिववाह ।।

हिन्दी अनुवाद :–

शिव केशव रूप में हो या कमल निवासी
ब्रह्म हो / अथवा जो भी रूप धारण करे
मुझ बलहीन को मुक्त करे आवागमन से
चाहे वह हो, चाहे वह हो वह शिव ही है।

शब्दार्थ :–

या ज़ि – अथवा, या तो
कमलज़नाथ – कमल में निवास है जिसका – ब्रह्मा
युहु – जो भी हो, जो भी, जैसा भी।
अबलि – अबला, शक्तिहीन
बव रॅंज़ (रॅंज) – संसार में आना और जाना, जन्म–मरण बन्धन
सुहहा – चाहे वह हो
सु शिववाह –' वह शिव ही है।

०००

{ 71 }

آمہِ پنہٕ سۆدرس ناوِ چھس لمان
کتہِ بوزِ دَے میون مئے تہِ دِیہٕ تار
آمین ٹاکین پونۍ زَن شمان۔
ژٕو چھُم برمان گرٕ گژھہ ہا

आमि पनु स्वदरस नावि छस लमान
कति बोज़ि दय म्योन मैति दियि तार
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न शमान
ज़ू छुम ब्रमान गरु गछु हा ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल – वाख 01 पृ० 62

आमि पनु सॅदुरस नावि छस लमान
कति बोज़ि दय म्योन म्यॅति दियि तार ।
ऑम्यन टाक्यन पोञ ज़न शमान
ज़ुव छुम ब्रमान गरु गछु हॉ ।।

–'The Ascent of Self' B.N. Parimoo वाख 04, पृ० 12

ओम् पनु सो द्रसु नाभि छस लह हुमान
कटि बद्ध दुय हानि मनु लगि तार
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न श्रेह हमान
ज़ीवु छुक ब्रमान पर गछ़ि हाह ।।

– लेखिका

यहाँ सर्व प्रथम इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि प्रस्तुत वाख के पाठ में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। शब्द प्रयोग विकृत हो गये हैं और रूप परिवर्तन के कारण अर्थ भी बदलता गया है।

मूलतः प्रस्तुत वाख त्रिविध जप से सम्बन्धित है। इस वाख के प्रथम पद के एक एक शब्द में पाठ परिवर्तन हुआ है। मेरे विचार से मूल रूप इस प्रकार होना चाहिए :–

आमि पनु	ओ३म् पनु
सॊदरस	सो द्रसु
नावि	नाभि
छस लमान	छस लह हुमान

अर्थ बोध :–

त्रिविध जप (अ, उ, म)

पनु – श्वास (पन ओ३मुक खारान ब्व छस)

सो – श्वास लेने की क्रिया (प्रश्वास)

द्रसु – भीतर खींचने की क्रिया

नाभि – नाभिस्थान

लह – अंगार (अनल का विकृत रूप)

हुमान – होम करना

ओ३म् रूपी त्रिविध जप से अर्थात् अ – 3 – म शब्द–क्रिया द्वारा श्वास को नाभि से ज्योतिर्मयी धार के रूप में उठा कर अपने हृदय में भर रही है।

पद का सही रूप होगा :–

ओ३म् पनु सो द्रसु नाभि छस लह हुमान

वाख का दूसरा पद देखिये :–

कति बोज़ि – कटि बद्ध

दय म्योन – दुय हानि

म्यॅति दियि तार – मन लगि तार

शब्दार्थ :–

कटि बद्ध – दृढ़ विश्वास के साथ

दुई – द्वैत भाव

हानि – हनन होना, समाप्त होना

मनु लगि तार – मन रूपी सरोवर से पार हो जाना

अतः पद का सही रूप होगा '

कटिबद्ध दुय हानि मनु लगि तार

बार बार ऐसा करने से दुई का भेद मिट जायेगा और मन केन्द्रित हो जायेगा ।

तृतीय पद का अन्तिम शब्द–प्रयोग है –

'शमान' – यह वास्तव में श्रेह हमान होना चाहिए । पानी से सजल होकर (भीग कर) कच्चा मिट्टी का पात्र पुनः गल कर मिट्टी का रूप धारण करता है उसी प्रकार यह आत्मा इस कच्चे मिट्टी के पात्र अर्थात् शरीर को त्याग कर इसे मिट्टी के आकार में बदल देता है ।

चतुर्थ पद आजकल इस प्रकार प्रचलित है –

ज़ुव छु ब्रमान गर गछ़ हा

इस पद में अन्तिम शब्द खण्ड – गर गछ़ हा' के बदले ' पर गछ़ि हाह' होना चाहिए। प्राण इस देह से पराये हो जायेंगे । मुक्ति प्राप्त हो, इस जन्म मरण के चक्कर से छूट जायें। इस मुक्ति के हेतु मचल रहा हूँ।

वाख के प्रथम पद का प्रथम शब्द 'ज़ुव' के बदले 'ज़ीव' होना

चाहिए जो वास्तव में 'ज़ीव' का वाचकशब्द है। सम्पूर्ण वाख का पाठ–शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है:–

ओम् पनु सो द्रसु नामि छस लह हुमान

कटिबद्ध दुय हानि मनु लगि तार ।

आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न श्रेह हमान

ज़ीवु छुक ब्रमान पर गछ़ि हाह ।।

हिन्दी अनुवाद :–

अ – उ – म शब्द क्रिया से श्वास को ज्योतिर्मयी
धार के रूप में उठाकर

निरन्तर क्रिया से नष्ट होगी दुई मन–सरोवर से पार
उतर कर

कच्चे मिट्टी के पात्र जल से सजल (भीगा हुआ) होकर,

जीव तू भ्रम में पड़ा है, श्वास पराया हो जायेगा

टिप्पणी :–

अ, उ, म शब्द क्रिया द्वारा श्वास को नाभि से ज्योर्तिमय धारा उठा कर चोटी पर घुमाते हुए हृदय में भर दे और फिर दूसरे श्वास के समय फिर नाभि से आरम्भ करना यह त्रिमुखी जप विद्या है। इस तरह बार–बार करने से द्वैत–भाव और मन के विकार बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं और मन प्रकाशित हो उठता है।

जिस तरह कच्ची मिट्टी के पात्र जल से सजल होकर फिर मिट्टी का रूप धारण कर लेता है । यह भ्रमात्मक शरीर (देह) प्राण के निकल जाने पर अथवा पराये होने पर फिर मिट्टी में विलीन हो जाएगा ।

ooo

{ 72 }

یُہ یہِ کرٕم کرِ پیٚترُن پانس
ارزُن برزُن بیٚین کیُت
اَنتہِ لاگِ رۄست پُشرُن سواتمس
اَدِ یوٗرۍ گژھہِ تہٕ توٗرۍ چھُم ہیوٚت

युह यि क्रम कर प्यतरुन पानस
अरज़ुन बरज़ुन बेयन क्युत
अन्ति लागि रोस्त पुशरुन स्वात्मस
अद यूर्‌य गछ़ि त तूर्‌य छुम ह्योत

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल– वाख 49 पृ० 116

यो यो कम्म् करि सो पानस् ।
मि जानो जि बियीस् कीवूस् ।।
अन्ते अन्त हारीयि प्राणस्
यौळी गच्छ़ ता तौळी क्कयोस ।।

–'ललवाक्याणि ग्रियर्सन – (स्टेन बी०) वाख 22 पृ० 79

युह यि कर्म करि पर्चुन (प्यतरुन) पानस
अर्ज़ुन बर्ज़ुन ब्यॉयिस क्युत
अन्तिह लागि–रोस्त पुशुरुन स्वात्मस
अदु यूर्य गछ्रु तु तूर्य छुम ह्योत ।।

–'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo वाख 85 पृ० 170

युस युथ कर्म करि तस सु पानस
मौ ज़ान ज़ि बेयिस क्युत
अन्ते अन्त होरी प्राणस
अदु यूस्य गछ़ि त तूस्य क्युत ।।

– लेखिका

लेखक बन्धुओं ने अपनी उर्वर कल्पना के आधार पर कई शब्द स्वयं जोड़ कर वाख के मूल रूप को विकृत कर दिया है। किसी बन्धु ने 'परचुन' शब्द जोड़ा तो किसी ने 'प्यतरुन' शब्द। इसी प्रकार 'अरज़ुन बरज़ुन' तथा 'पुशरुन स्वात्मस' भी प्रक्षिप्त शब्द–खण्ड हैं। इतना ही नहीं दूसरी भाषाओं में अनुवाद करते समय इसे प्रथम पुरुष वाचक सम्बोधन बनाया है जबकि मूलतः यह अन्यपुरुष वाचक अभिव्यक्ति है।

स्टेन महोदय ने प्रस्तुत वाख को जिस रूप में पेश किया है वह मूलरूप के बहुत निकट है। 'युह यि कर्म करि प्यत्रुन पानस' के बदले अधिक विश्वसनीय रूप होगा –

'युस युथ कर्म करि तस सु पानस '

स्टने महोदय लिखते हैं :–

'मि जानो जि बियीस् ।। की बूस् ।।

इसका अधिक सुस्पष्ट रूप है –

मौ ज़ान ज़ि बेयिस क्युत ।

अब इसमें 'अरज़ुन बरज़ुन' शब्द का प्रयोग मेरे विचार से अवांछनीय है।

वाख की तृतीय पंक्ति के विषय में भी मेरा विश्वास है कि स्टेन महोदय सही रूप के पर्याप्त निकट हैं । वे लिखते हैं –

'अन्ते अन्त हारी यि प्राणस्'

यह वास्तव में 'होरी प्राणस' होना चाहिए ।

'प्राण होरुन' अर्थात् प्राण निकल जाना, प्राणों का देह त्याग करना । अब यह सरल और अर्थमय अभिव्यक्ति विकृत कैसे हो गयी –

'अन्तु लागु रोस्त पुशरुन स्वात्मस'

यह समझ में नहीं आ रहा है और न ही विद्वान बन्धुओं ने इसकी व्याख्या की है अथवा इसको समझाने का प्रयास ही किया है।

इसीलिए स्टेन महोदय के पाठ को मान्य मान कर तथा 'हारीयि' की स्थान पर 'होरी' शब्द का प्रयोग करके पाठ इस प्रकार होगा –

' अन्ते अन्त होरी प्राणस '

अन्तिम पंक्ति में ' तूर छुम ह्योत' उचित और सही प्रयोग नहीं है।

'अदु यूरि गछ़ तु तूरि छु ह्योत'

'तूरि छुम ह्योत' शब्द प्रयोग व्यर्थ है क्योंकि ' अदु यूरि गछ़' के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । सही प्रयोग होगा :–

' अदु यूरय गछ़ि तु तूरय क्युत '

इतने सरल व्यावहारिक शब्द प्रयोग को विकृत करने की क्या आवश्यकता है ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित होता है :–

'युस युथ कर्म करि तस सु पानस
मौ ज़ान ज़ि बेंयिस क्युत
अन्ते अन्त होरी प्राणस
अद यूरय गछ़ि त तूरय क्युत ।।

हिन्दी अनुवाद :–

जो जैसा कर्म करेगा सो उसके निजी हेतु
मत समझ कि दूसरा उसका भागीदार है
अन्तकाल में जब प्राण छूट जायेंगे
फिर जहाँ जायेगा वहाँ भोगना होगा फल उसका

शब्दार्थ :–

अन्ते – (मूल – अन्त) आखिरी, अन्त काल
होरी प्राण – जब प्राण साथ छोड़ देंगे ।

ooo

{ 73 }

روٗ مَتہٕ تھَلِ تھَلِ تاپِتَن
تاپِتَن وۄتَم دیش !
وُرن مَتہٕ لوٗکہ گرِ اَژیتَن
شِو چھُے کرۄٗٹھ تہٕ ژیٚن وۄپدیش

रव मतु थलि थलि तॉप्य्तन
तॉप्यतन व्वोतम देश !
वरुन मतु लूक गरि अॅच्य्तन
शिव छुय क्रूठ तु चे़न व्वपदेश ।

'ललद्यद' – प्रो0 जयलाल कौल– वाख 79, पृ0 152

रव मत आत्मथलि तापीतन्
तापीतन् । उत्तमि देशा ।।
वर्ण मत लोटो गृह् अचीतन् ।
शिव छ्योम कष्टो त चिन् उपदेश ।।

–'ललवाक्याणि ग्रियर्सन – (स्टेन बी0) वाख 35–पृ0 71

रव मतु अ+उत्तम थलि तॉपतन
तॉपतन उत्तमुय दीश
वर्ण मतु लोक्ट्यन गरन अॅच़तन
शिव छुय किव इष्टो चे़न व्वपदीश ।।

– लेखिका

वाख के प्रथम पंक्ति में 'रव मतु थलि थलि तॉपतन' का प्रयोग विद्वान बन्धुओं ने किया है। स्टने महोदय ने आत्मथलि प्रयोग किया है। यह वास्तव में शब्द–विकार का परिणाम है। मूल शब्द होना चाहिए – अ–उत्तम अर्थात् जो उत्तम नहीं है अतः थलि थलि' के स्थान पर 'अ–उत्तम' थलि शब्द–प्रयोग अधिक विश्वसनीय एवं मान्य है। तृतीय पंक्ति में 'लूकु गरु' शब्द प्रयोग भी प्रक्षिप्त है। वास्तव में यह लोकट्यन गरन' शब्द प्रयोग होना चाहिए।

वर्ण मत लोटा गृह अचीतन् ।'

लोटो गृह 'लोक्ट्यन गरन' का ही वाचक है।

अन्तिम पंक्ति का पाठ पूर्णतः अशुद्ध एवं विकृत है ।

मैं यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि ' शिव छुय क्रूठ' अथवा 'शिव छयोय् कष्टो' सही शब्द–प्रयोग नहीं है।

शिव का शाब्दिक अर्थ है – शुभ, मंगल, कल्याण, सुख, आनन्द, परब्रह्म, अद्वैत ब्रह्म, सुखद आदि । शिव को क्रूठ कहना या 'कष्टो' बताना उचित नहीं है। यह वास्तव में 'किम् इष्टो' संस्कृत शब्द प्रयोग का तद्भव रूप 'किव इष्टो' है ।

समझ में नहीं आ रहा है कि विद्वान बन्धुओं ने शिव का 'क्रूठ एवं 'कष्टो' क्यों कहा है। यह तो 'प्रकाश स्तम्भ', ज्योति लिंग, नवप्रकाश, प्रकाश गृह, प्रकाश स्तूप, एवं हर्षोल्लासमय मंगल का वाचक शब्द है। इसलिये वाख की अन्तिम पंक्ति का सही पाठ होगा – 'शिव छुई किव इष्टो चेन व्वपदीश '।

सम्पूर्ण वाख का सही पाठ इस प्रकार निश्चित होता है –

रव मतु अ+उत्तम थलि तॉपतन

तॉपतन उत्तमुय दीश

वर्ण मतु लोक्ट्यन गरन अँचतन
शिव छुय किव इष्टो चेन व्यपदीश ।

हिन्दी अनुवाद :–

सूर्य रश्मियाँ अ+उत्तम स्थलों में प्रवेश न करे (हो नहीं सकता)
खाली उत्तम देश ही तपाये
जलदेव छोटे घरों में प्रवेश न करे (हो नहीं सकता)
शिव कैसे इष्ट हैं तनिक पहचान ।
(अर्थात् शिव समद्रष्टा/समदर्शी (सब को एक सा देखने वाला है) इनके सम्मुख कोई उत्तम अथवा अनुत्तम नहीं है। कोई छोटा नहीं है , कोई बड़ा नहीं है।)

शब्दार्थ :–

अ + उत्तम – अनुत्तम
वरुण – एक देवता जो जल के अधिपति माने जाते हैं।
किव इष्टो – किम् इष्टो (किम् – संस्कृत सर्वनाम कैसे)

ooo

یِہَے ماتٔر رۄُپ پَیے دِیے
یِہَے یآرِیا رۄُپ کرِ وِشیش
یِہَے مایا رۄُپ اَنتِہٕ زُوِیہے
شِو چھُے کرۄُٹھ تہٕ ژیٖن وۄپدیش

यिहय मातृ रूप पय दिये
यिहय बॉरिया रूप करि विशेष
यिहय माया रूप अन्ति ज़ुविहेय
शिव छुय क्रूठ त चे़न व्वपदेश ।।

–'ललद्यद' – प्रो० जयलाल कौल, वाख 81 पृ० 154

एहिय् मातृरूपी पय् दीयिय्।
एहिय् ।। भार्यरूपी विशेषा ।
एहिय् ।। मायि रूपी जीव् हियिय्
शिव छ्योयी कष्टो त चिन् ।। उपदेश ।।

–'ललवाक्याणि ग्रियर्सन – (स्टेन बी०) वाख 32 पृ० 71

शिवुय मातृ रूपी पय दियिय्
यिहय भार्यारूपी करे विशीश
यिहय मायायिरूपी अन्तज़ुव हियिय
शिव छुय किवइष्टो चे़न व्वपदीश ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद विचारणीय है :–

'यिहय मातृ रूप पय दिये '

इस पद में प्रथम शब्द ही प्रक्षिप्त है। 'यिहय' के बदले 'शिव' शब्द–प्रयोग सार्थक है। समस्त संसार मूलतः शिव रूप है, यह सृष्टि तो उन्हीं की लीला है, उन्हीं की इच्छा का परिणाम है। सृष्टि का प्रत्येक कर्म उन्हीं से प्रेरित है। शिवा को मूर्त्त रूप प्रदान करने में भी वे ही सक्रिय रहे हैं। अतः 'यिहय' के बदले 'शिव' शब्द प्रयोग से वाख के प्रत्येक पद का परस्पर सम्बन्ध जुड़ जाता है और अन्तिम पद की सार्थकता सिद्ध होती है।

अन्तिम पद में 'शिव छुई क्रूठ' शब्द प्रयोग भ्रामक है। 'शिव' तो कल्याण, मंगल, शुभ, अद्वैत ब्रह्म, सुख एवं मोक्ष का वाचक है। शिव कभी क्रूठ (कठोर, मुश्किल) नहीं हो सकते। शिव तो शिव हैं – सुखद, मनोरम, कल्याणकारक । क्रूर, परपीडक, हानिकारक, कष्ट साध्य, क्लिष्ट, संकटकारक अथवा कठोर होने का प्रश्न ही नहीं उठता । यह वस्तुतः 'किव इष्टो' शब्द प्रयोग है जो संस्कृत 'किम् इष्टो' का तद्भव रूप है।

अतः अन्तिम पद शिव छुय क्रूठ तु चे़न व्यपदीश' के बदले सही रूप होगा – ' शिव छुई किव इष्टो चे़न व्यपदीश'।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है :–

शिवुय मातृ रूपी पय दियिय्
यिहय भार्यारूपी करे विशीश
यिहय मायायिरूपी अन्तज़ुव हियिय
शिव छुय किवइष्टो चे़न व्यपदीश ।।

हिन्दी अनुवाद :–

शिव ही मातृरूप में पालन पोशन करता है
यही भार्या रूप में जन्म देता है विशिष्ट आकृतयों को
यही अन्त में मोहकारिणी शक्ति के रूप में प्राण हर लेता है,
शिव अद्भुत इष्ट है, तनिक पहचान ले इसे।

शब्दार्थ :–

पय द्युन – शक्ति प्रदान करना, पालन पोशन करना, दूध देना (पिलाना)

अन्तजुव – अन्तिम समय में प्राण लेना

किवइष्टो – मूल सं0 किम् इष्टो – कैसे इष्ट हैं ?

ooo

{ 75 }

سمسار نوم تاو تژے

موڈن کرژے تاوتہٕ آے

گیانہٕ مدرا چھہٕ گیانین کرژے

سو یوگہٕ کلہٕ کتھ پرزنہٕ آے

सम्सार नोम तॉव तॅच्चुय

मूडन किच्चुय तावनु आय

ग्यानु मुद्रा छि ग्यानियन किच्चुय

स्व यूगु कलु किन्य् परज़नु आय ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल, वाख 201 पृ0 280

संसॉर नॉव तॉव तॅचुय

मूडव किन्य हेचुय तावनु आयि

यूगु मुद्रा छय ग्यॉनियन किचुय

यिम यूगु कलि किन्य् प्रज़वुनु आयि ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में 'संसार नोम' शब्द प्रयोग पूर्णतः अस्पष्ट और अर्थ अभिव्यक्ति में असमर्थ है। पूरे पद को पढ़कर अर्थ तो खींच कर निकाल ही लेते हैं परन्तु शब्द–प्रयोग सही नहीं है। 'संसार नोम' के बदले 'संसार नॉव' प्रयोग से आगे आने वाले दो शब्दों 'तॉव तचई' के साथ सार्थक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

अतः पूरे पद का सही पाठ होगा :–

' संसॉर नॉव तॉव तॅचुय'

वाख का द्वितीय पद पूर्णतः प्रक्षिप्त और भ्रामक है – ' मूडन किचुय तावनु आय' ।

तनिक विचार करने की आवश्यकता है कि जब संसार रूपी तवा तप्त हो उठता है तो क्या केवल मूड जन ही उसकी लपेट में आते हैं ? क्या बुद्धि सम्पन्न उस तप्त वातावरण से पीड़ित नहीं हो उठते। जब आग लग जाती है तो क्या सभी जन उसकी चपेट में नहीं आते; क्या आग के शोले चुन चुन के दग्ध कर देते हैं ?

वस्तुतः पद के पाठ में विकार आ गया है कुछ शब्द छूट गए हैं और कुछ शब्दों का पाठ विकृत हो चुका है। परिणामतः अभिव्यक्ति अपूर्ण रह गई है। इस पद का सही पाठ इस प्रकार हो सकता है –

' मूड़व किन्य हेच़य, तावनु आयि '

तृतीय पद के पाठ को देखिये.–

' ग्यान मुद्रा छय ग्यॉनियन किच़य '

चतुर्थ पद में 'यूग कलि' शब्द का प्रयोग किया गया है अतः तृतीय पद में 'ग्यान' के बदले 'योग' शब्द का प्रयोग अधिक सटीक और सार्थक दिखाई पड़ता है।

मेरा विचार है कि 'ग्यान मुद्रा छय ग्यॉनियन किचुय' के बदले ' योगु मुद्रा छय ग्यानियन किच़य' होना चाहिए तब इस पद का सम्बन्ध चतुर्थ पद के साथ जुड़ जाता है।

चतुर्थ पद में 'परज़न' शब्द प्रयोग के बदले 'प्रज़वनु' शब्द–प्रयोग अधिक उपयुक्त और विश्वसनीय है।

चतुर्थ पद का प्रथम शब्द 'स्व' शब्द भी सही नहीं है। बात योगी

जनों की हो रही है। अभिव्यक्ति बहुवचानात्मक़ है अतः 'स्व' के बदले 'यिम' शब्द का प्रयोग सार्थक एवं अर्थ प्रेषणीयता की दृष्टि से सटीक है । इस पंक्ति का सही रूप इस प्रकार है –

' यिम यूगु–कलि किन्य प्रज़वुनु आय'

अर्थात् यह योग मुद्रा उन ज्ञानियों के लिए है जो योग की शक्ति से, योग के लगन से इस को पहचानते आए हैं।

सम्पूर्ण वाख का पाठ इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

संसार नॉव तॉव तॅचुय
मूडव किन्य हेचुय, तावनु आयि
यूगु मुद्रा छय ग्यानियन किचुय
यिम यूग कलि किन्य प्रज़वुनु आयि ।

हिन्दी अनुवाद :–

संसार नामी तवा बहुत गर्म है
मूढ़ इसे सुखद समझते, वहीं इस में झुलस गये
योग मुद्रा योगियो के लिये है
जो अपनी लगन से उसे पहचान लेते हैं।

शब्दार्थ :–

तॉव – तवा
मूड – मूर्ख
हेच़य – हितकारी
तावन युन– झुलस जाना
कल – लगन
प्रजुवन – (प्रज़नावुन) पहचानना
यूग मुद्रा – योग मुद्रा,, चित वृत्ति निरोध का उपाय और चेष्टा, योगासन ।

०००

{ 76 }

پَرُن پولُم اپُرُے پوٚرُم
کیسر وَنہٕ وولُم رٹِھتھ شال
پَرَس پرٕنُم تہٕ پانَس پولُم
اَدٕ گوم مولوٗم تہٕ زٕنِم حال

परुन पोलुम अपुरुय पोरुम
केसर वनु वोलुम रॅटिथ शाल
परस प्रनुम तु पानस पोलुम
अदु गोम मोलूम तु ज़ीनिम हाल ।।

–'ललद्यद' प्रो० जयलाल कौल, वाख 47 पृ० 114

परुन पोलुम अपोरुय रोवुम
केसर वनु वोलुम र'टिथ शाल
परस प्रोनुम तु पानस पोलुम
अदु गोम मोलूम तु ज़ीनिम हाल ।।

–'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo वाख 72 पृ० 181

परुन पोरुम अपोर प्रोवुम
केसर मन वौलुम रटिथ ज़्वनु शाल
पॉरन प्रनुम पानस पोलुम
आदिगोन मन ज़ोनवुन महाल ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख के प्रथम पद में 'परुन पोलुम' के बदले 'परुन पोरुम' होना चाहिउए । ललद्यद कहती है कि जो पठनीय था उससे अपने आपको सुसज्जित किया, उससे अपना शृंगार किया। 'पोलुम' शब्द के बदले अधिक उपयुक्त और सार्थक शब्द 'पोरुम' है।

'अपुरुय पोरुम' शब्द प्रयोग भी सन्देहास्पद है।

मेरा विचार है कि यह 'अपुरुय पोरुम' के बदले 'अपॊर प्रोवुम' होना चाहिए । जिसका बोध नहीं था जो 'अपॊर' था उसे धारण किया, उसकी प्राप्ति हुई । अतः वाख का पहला पद इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

' परुन पोरुम अपॊर प्रोवुम '

अब द्वितीय पद देखिये :–

' केसर वनु वोलुम रटिथ शाल '

इस पद में 'वन' शब्द प्रक्षिप्त है। यह वास्तव में वन के बदले 'मन' होना चाहिए।

सिंह रूपी मन को नियंत्रित किया । नियंत्रण द्वारा उसे अपने वश में किया । अतः पद का सही रूप होगा –

' केसर मन वॊलुम रटिथ ज़्वनु शाल '

तृतीय पद देखिये :–

' परस प्रनुम तु पानस पोलुम '

'परस' शब्द प्रक्षिप्त है। वास्तव में सही शब्द प्रयोग है ' पॉरन अर्थात् इच्छुक शिष्य, पैरवकार ।

जो इच्छुक थे शिष्य भाव में थे, उन्हें बोध कराया। जो सीख उन्हें दी उसे ही अपने जीवन में व्यवहार में लाया। सिद्धान्त और मान्यता को व्यावहारिक रूप प्रदान किया ।

चतुर्थ पद देखिए –

' अदु गोम मोलूम तु ज़ीनिमं हाल '

पूरा पद प्रक्षिप्त है इसका मूल रूप से कोई सम्बन्ध नहीं मेरे विचारानुसार इसका मूल रूप है –

' आदि गॊन मन ज़ॊनुवुन महाल '

प्रथम गुण तो मन को कठिनाई का आभास दिलाना है। इसी लिये मन को वश में करना आवश्यक बन जाता है।

सम्पूर्ण वाख का नव–रूप अथवा मूल रूप इस प्रकार से नियत हो जाता है –

परुन पॊरुम अपॊर प्रोवुम
केसर मन वॊलुम रॅटिथ ज़्वनु शाल
पॉरन प्रनुम पानस पोलुम
आदिगॊन मन ज़ॊनुवुन महाल ।।

हिन्दी अनुवाद :–

जो पठनीय था उसे हुई सुसज्जित, जो था अपठनीय
उसे किया धारण
चेतना द्वारा सिंह रूपी मन को किया नियंत्रित शृगाल सदृश
ज्ञान–बोध कराया इच्छुक को, सिद्धान्त अपनाया जीवन में
आदि–गुण तो मन को कठिनाइयों से परिचित कराना है।

शब्दार्थ :–

पोरुम – सुसज्जित करना, शृंगार करना, सजाना, सज्जा करना
प्रोवुम – प्रप्ति हुई
केसर – मूल सं0 केसरी, शेर

पॉरन – पैरवकार, इच्छुक शिष्य

प्रनुम – समझाना, चेत करना, स्पष्ट करना

आदि गोन – प्रथम गुण,

ज़ौनुवुन – आभासी visual (दृश्य) प्रतीति, चेतना (क्रि०)

महाल – मुश्किल ।

ooo

کلمے پورم کلمے سورم
کلمے کچم پنئے پان
کلمے ہنہ ہنہ موین تورم
اد لل واچس لامکان

कॅल्यम्य पोरुम कॅल्यम्य सोरुम
कॅल्यम्य कॅचुम पनुनुय पान
कॅल्यम्य हनि हनि मोयन तोरुम
अदु लल वॉचुस लामकान ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल, वाख 226 पृ0 294

कॅलीमुय दोरुम कॅलीमय व्यचोरुम
कॅलीमुय कोचुम पनुनुय पान
कॅलीमुय रुमन रुमन पोरुम
अदु लल वॉचुस प्रकाशस्थान ।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख में विशिष्ट शब्द–प्रयोग के कारण कई शंकायें उपस्थित हुई हैं ।

प्रथम पद में 'कॅल्यम्य' शब्द विचारणीय है। यह मूलतः 'क्लीम्' शब्द है जो वस्तुतः शक्तिमन्त्र (बीजमन्त्र) ' ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' में प्रयुक्त 'क्लीम्' शब्द है जो शक्ति का वाचक है। इस शब्द–प्रयोग के

द्वारा लल्लेश्वरी शक्ति उपासना के प्रति अपने अडिग विश्वास को दोहराते हुए निजी अनुभव को आत्म विश्वास के साथ व्यक्त कर रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लल्लेश्वरी के चिन्तन पर कश्मीर–शैवमत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था ।

द्वितीय पद में 'कॅचुम' के बदले 'कोचुम' शब्द प्रयोग अधिक उपयुक्त है। इस बीजमन्त्र के बन्धन में अपने आपको सीमाबद्ध किया। इस मन्त्र की सीमा में अपने आप को अनुशासित किया ।

रोम–रोम में शक्ति मन्त्र का प्रवेश कराया और उसके प्रभाव से शरीर का प्रत्येक अणु सिक्त हो उठा। तब लल प्रकाशस्थान तक पहुँच सकी।

मूलतः यह वाख शक्ति साधना पर आधारित है और साधनात्मक जीवन के महत्त्वपूर्ण पड़ाओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर रहा है।

वाख का मूल शब्द रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है :–

कॅलीमुय दोरुम कॅलीमय व्यचोरुम
कॅलीमुय कोचुम पनुनुय पान
कॅलीमुय रुमन रुमन पोरुम
अदु लल वॉचुस प्रकाशस्थान ।।

हिन्दी अनुवाद :–

'क्लीम्' ही धारण किया और विचार शृंखला में अपना लिया
'क्लीम् ' (मन्त्र) की सीमाओं में अपने आपको अनुशासित किया
'क्लीम्' रोम रोम में धारण किया
तब लल प्रकाशस्थान तक पहुँच पाई ।

शब्दार्थ :–

क्लीम्' – ओ३म् ह्रीं, श्रीं, क्लीम् चण्डिकायै नमः '
इस मन्त्र में – ह्रीं (सरस्वती), श्रीम् (लक्ष्मी)
'क्लीम्' (शक्ति) चामुंडा / चण्डिका देवी के लक्षणों की ओर संकेत है।

दौरुम – धारण किया ।

वॅचौरुम – विचार में लाया ।

पौरुम – सजाया, सुसज्जित किया ।

प्रकाश स्थान – आनन्दलोक, परमपद, सहस्रार चक्र

टिप्पणी :–

1. इस वाख को पूर्णतः आत्मसात् करने के हेतु ललद्यद के निम्न लिखित वाख को ध्यान में रखना होगा :–

' मॉरिथ पाँच़भूत तिम फल हण्डी
चे़तन दानु वखुर ख्यथ
तदय ज़ानख परमपद **च़ण्डी**
हशी खौशॅ, खोर कोतु ना ख्यथ ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल, वाख 60 पृ0 128

2. 'गणेश कवच' का एक मन्त्र देखने और ध्यान रखने योग्य है :–

' ऊं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम्
तालुकं पातु विघ्नेशः, संततं धरणीतले ।'

–विश्वगुरु कृत 'कल्पतरु' पृ0 111

'अरब और हिन्द के तालुक्कात' – सइद सुलैमान नदवी, (प्रकाशक

– दारउल मुसनफीन, नदवा यू0 पी0) की पुस्तक इस दृष्टि से विचारणीय है जिसमें ' संस्कृत के तत्सम शब्दों का अरबी भाषा में प्रवेश' विषय महत्त्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य है।

ooo

لَزکاسی شیت نِواری
ترٛن زَل کَری آہار
یِہ کمٛی وۄپدیش کورُے بٹا
اَچیتَن وَٹس سَچیتَن دیُن آہار

लज़ कासी शीत निवारी
तृण ज़ल करी आहार
यि कॅम्य व्वपदीश कोरुय बटा
अचे़तन वटस सॅचे़तन द्युन आहार ।।

—'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल, वाख 65 पृ0 136

लज़ कासिय शीत न्यवारिय
त्रिणु ज़लु करान आहार
यि कम्य् व्वपुदीश कोरुय हूटु बटा
अचीतन वटस सचीतन द्युन आहार

—'The Ascent of Self' - B.N. Parimoo वाख 93 पृ0 182

लज़ कासी शीत न्यवारी
तृण ज़ल करन आहार
यि कॅम्य व्वपदीश कोरुय युथ हबा हठा
अचे़तन हठु सचे़तन द्युन आहार ।।

— लेखिका

प्रस्तुत वाख हमारे सामाजिक जीवन पर एक करारा व्यंग्य है। पशु–बलि को एक अमानवीय कृत्य समझते हुए लल्लेश्वरी कश्मीरी जन–मानस को इस के विरुद्ध सचेत करने का प्रयास कर रही है।

वाख के प्रथम एवं द्वितीय पद का पाठ शुद्ध है, इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ है। केवल तृतीय एवं चतुर्थ पद विचारणीय है

पशुबलि केवल पण्डित ही नहीं देते हैं अपितु कश्मीर निवासी प्रत्येक वर्ग और समुदाय के लोग प्रसन्नचित्त् पशु–बलि देकर अद्‌भुत अलौकिक को सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं।

'यि कॅम्य व्यपदीश कोरुय बटा' लल्लेश्वरी ने कभी नहीं कहा होगा । पशु–बलि केवल कश्मीरी पण्डित अर्थात् ' बट्‌टा' तक ही सीमित नहीं है। मेरे विचार से 'बट्‌टा' शब्द प्रक्षिप्त हैं बाद में जोड़ा गया है। 'बट्टा' के बदले 'युथ हबा हठा' होना चाहिए जो एक सार्थक अभिव्यक्ति है और प्रत्येक कश्मीरी निवासी पर लागू होती है।

चतुर्थ पद में 'अचे़तन वटस' शुद्ध प्रयोग नहीं है। 'वटस' के बदले 'हठु' शब्द का प्रयोग सार्थक है जो सम्पूर्ण वाख के साथ जुड़ जाता हैं। सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

लज़ कासी शीत न्यवारी
तृण ज़ल करन आहार
यि कॅम्य व्यपदीश कोरुय युथ हबा हठा
अचे़तन हठु सचे़तन द्युन आहार ।।

हिन्दी अनुवाद :–

लज्जा से मुक्ति मिलेगी, होगा शीत निवारण
आहार करता है तृण–जल का

किस ने तुझे ऐसा हठ करने को उपदेश दिया है
अचेतन हठ से देना सचेतन आहार हेतु ।।

शब्दार्थ :–

लज़ – लज्जा
शीत – ठंड
निवारी – निवारण होगा
तृण – घास के तिनके
ज़ल – जल, पानी
आहार – भोजन, भोज्य
व्पदीश – उपदेश, नसीयत
अचे़तन – बेजान, चेतनाशून्य
सचेतन – चेतना युक्त, जानदार ।

विशेष टिप्पणी :–

लल्लेश्वरी का यह वाख वस्तुतः एक व्यंग्य है हमारी मान्यताओं और क्रूरताओं पर प्रहार । हमें पुनः चिन्तन के लिये प्रेरित करता है। अहिंसा के सिद्धान्त का पोषण और जीव–जन्तुओं के प्रति स्नेहमय सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की शक्ति प्रदान करता है। 20वीं शताब्दी में अहिंसा के सिद्धान्त की मूल चेतना लल–वाखों में भी निहित है। लल्लेश्वरी का कहना यह है कि मेषा की बलि अथवा पशु बलि वस्तुतः तामसिक प्रवृत्तियों से युक्त तमोगुणी–जनों की हठ इच्छा का परिणाम है। ऐसे क्रूर पुरुषों पर कवयित्री ने व्यंग्य कसा है। 'अचे़तन हठ' वस्तुतः निष्प्रयोजन हठ धर्मिता का बोधक है।

○○○

{ 79 }

ژٕے دیوٕ گرتَس تہٕ دھرتی سزَکھ
ژیئے دیوٕ دِتھ کرٛنزِن پرٛان
ژٕے دیوٕ ٹھنہٕ رؠستےٚ وزَکھ
کُس زانہٕ دیوٕ چون پرَمان

चुॅय दीवु गरतस तॅ धरती स्रज़ख
च्येय दीवु दितिथ क्रंज़न प्राण ।
चुॅय दीव ठनि रुस्तुय वज़ख,
कुस ज़ानि दीवु चोन परमान ।।

–'ललद्यद' प्रो0 जयलाल कौल, वाख 132 पृ0 216

चुॅय दीवॅ गरतस तॅ दॉरिथ सव्रज़ आख
चुॅय दीवॅ दिवुवुन क्रंज़न प्राण ।
चुॅय दीव ठनि रौस वज़न आख
कुस ज़ानि दीव चोन प्रमाण।।

– लेखिका

प्रस्तुत वाख का प्रथम पद पर्याप्त विकृत हो चुका है। 'धरती स्रज़ख' शब्द प्रयोग विचारणीय है –. मेरे विचार से 'स्रज़ख' शब्द के बदले ' सॅव्रज़ आख' शब्द–प्रयोग होना चाहिए जिसका अर्थ है परदा पोशी करके आना, रूप छिप कर आना। भौतिक काया के भीतर अलौकिक आत्मा रूपी शिवतत्त्व निहित रहता है।

वाख के इस पद में 'च्येय दी॑व दितिथ क्रंज़न् प्राण' लिखा गया है। जन्म–प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है अतः अभिव्यक्ति इस प्रकार होनी चाहिए :–

चॖुय दीवॅ दिवुवुन क्रंज़न प्राण '

तीसदे पद में ' चुय दीव ठनि रुस्तुय वज़ख' प्रयोग देखने को मिलता है। यह अभिव्यक्ति अपूर्ण है इसे स्पष्ट करने के हेतु कोई शब्द–प्रयोग लुप्त हो चुका है। मेरे विचार से पूर्ण अभिव्यक्ति इस प्रकार होनी चाहिए :–

' चॖुय दीव ठन्य रुस वज़न आख '

अन्तिम पंक्ति में शब्द–प्रयोग इस प्रकार देखने को मिलता है–

' कुस ज़ानि दीव चोन परमान '

यहाँ 'माप–तोल' से कोई प्रयोजन नहीं है। 'परमान' वस्तुतः अशुद्ध अभिव्यक्ति है। संस्कृत भाषा का प्रचलित शब्द है – प्रमाण' और उसी शब्द का प्रयोग यहाँ उचित दिखाई देता है । अतः पद का स्वरूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

' कुसु दीव ज़ानि चोन प्रमाण '

कहने का अभिप्राय यह है कि देव ! आपके अद्‌भुत रचना संसार का रहस्य कौन जान सकता है ? आपकी सृष्टि लीला आश्चर्य चकित कर देती है, आपका वैभव अलौकिक है। आप ही समस्त सौन्दर्य–तत्त्वों का सारतत्त्व हैं। आपकी रहस्यमय लीला को कौन जान सकता है ।

सम्पूर्ण वाख का पाठ शुद्ध रूप इस प्रकार निश्चित हो जाता है –

चॖुय दीवॅ गरतस तॅ दॉरिथ सव्रज़ आख
चॖुय दीवॅ दिवुवुन क्रंज़न प्राण ।

चॖय दीव ठनि रौस वज़न आख,
कुसु दीव ज़ानि चोन प्रमाण ।।

हिन्दी अनुवाद :–

तुम्हीं देव हो काया भीतर, तुम्हीं निहित हो रूप छिपा कर
तुम्हीं देव आकृतियों में प्राण फूँकते
तुम्हीं अनाहत नाद में नाद स्वरूप व्यक्त होते
देव ! कौन जान सकता यह रहस्य अद्‌भुत ।

शब्दार्थ :–

गरतस – आकार देने की क्रिया
सव्रज़ – परदा पोशी ।
क्रंज़ – ढाँचा ।
प्रमाण – सबूत, अस्तित्व बोध, शाश्वत स्वरूप ।

– ○ ○ -

परिशिष्ट – 1

The extrarcts from 'The Vitasta' Official Organ of Kashmir Sabha,Kolkata, (for private cicurlation only) vol. xxxvii No.1 April-May 2004.

National Seminar "Remembering Lal Ded in Modern Times" held under the auspices of Kashmir Education Culture and Science Society in Delhi in November 2000.

The speakers in the Seminar stressed the importance of an authoritative compilation of Lal Ded's Vaakhs. The difficulty being encountered in this regard is the absence of authentic manscript(s) of her verses which before their publication used to be transmsitted from generation to generation by word and mouth at the risk of interpolations and linguistic changes. Some of the verses are rejected as spurious."

* * *

परिशिष्ट — 1

The extracts from "The Vitasta" Official Organ of Kashmir Sabha Kolkata (for private circulation only) Vol XXXVIII No.1 April-May 2004

National Seminar "Remembering Lal Ded in Modern Times" held under the auspices of Kashmir Education Culture and Science Society in Delhi in November 2000.

The speakers in the Seminar stressed the importance of an authoritative compilation of Lal Ded's Vakhs. The difficulty being encountered in this regard is the absence of authentic manuscripts of her verses which belied their genuineness used to be transmitted from generation to generation by word and mouth at the risk of interpolations and linguistic changes. Some of the verses and rejected as spurious.

* * *

परिशिष्ट – 2

ग्रियर्सन द्वारा रचित 'ललवाक्याणी' में लिखी गई प्रस्तावना (Introduction) के कुछ अंश

The verses in the following collection are attributed to a woman of Kashmir, named in Sanskrit, Lalla Yogeswari. There are few countries in which so many wise saws and proverbial sayings are current as in Kashmir, and none of these have greater repute than those attributed by universal Consent to Lad Ded, or 'Granny Lal' as she is called now a days. There is not a Kashmiri, Hindu or Musalman, who has not some of these ready on the tip of his tongue, and who does not reverence her memory.

Little is known about her. All traditions agree that she was a contemporary of Sayyid Ali Hamdani, the famous saint who exercised a great influence in converting Kashmir to Islam. He arrived in Kashmir in A.D. 1380, and remained there six years, the reigning sovereign being Quatabu'd-Din (A.D. 1377-93). As we shall see from her songs, Lalla was a yogni, i.e. a follower of the Kashmir branch of the Saiva religion, but she was no bigot and to her, all religions were at one in their essential elements. There is no inherent difficulty in accepting the tradition of her association with Sayyaid Ali. Hindus, in their admiration for their coreligionist, go, it is true, too far when they assert that he received his inspiration from her, but the Musalmans of the valley, who naturally deny this, and who consider him to be the great local apostle of faith, nevertheless look upon her with the utmost respect.

Numerous stories are current about Lalla in the valley, but none of them is deserving of literal credence. She is said to have been originally a married woman of respectable family. She was

cruelly treated by her mother-in-law, who nearly starved her. The wicked woman tried to persuade Lalla's husband that she was unfaithful to him, but when he followed her to what he believed was an assignation, he found her at prayer. The mother-in-law tried other devices, which were all conquered by Lalla's virtue and patience, but at length she succeeded in getting her turned out of the house. Lalla's wo forth in sagas and adopted a famous Kashmiri Saiva saint named Sed Boy as her Guru or Spiritual preceptor. The result of his teaching was that she herself took the status of a mendicant devotee, and wandered about the country singing and dancing in a half-nude condition. When remonstrated with for such disregard for decency, she is said to have replied that they only were men who feared God, and that there were very few of such about. During this time Sayyid 'Ali Hamdani' arrived in Kashmir, and one day she saw him in the distance crying out 'I have seen a man'. she turned and fled. Seeing a baker's shop close by she leaped into the blazing oven and disappeared being apparently consumed to ashes. The saint followed her and inquired if any woman had come that way, but the baker's wife out of fear, denied that she had seen any one. Sayyid 'Ali continued his research and suddenly Lalla reappeared from the oven clad in the green garments of Paradise.

The above stories will give some idea of the legends that cluster round the name of Lalla. All that we can affirm with some assurance is that she certainly existed and that she probably lived in the 14th century of our era, being a contemporary of Sayyid 'Ali Hamdani at the time of his visit to Kashmir. We know from her own verses that she was in the habit of wandering during about in a semi-nude state, dancing and singing in acstatic frenzy as did the Hebrew Nabi's of old and the more modern Dervishes.

No authentic manuscripts of her composition has come down to us. Collection made by private individuals have occasionally been put together, but none is complete, and no two agree in contents or text, while there is thus a complete dearth of ordinary manuscripts, there are, on the other hand, sources from which an approximately correct text can be secured.

The ancient Indian system by which literature is recorded

not on paper but on the memory and carried down from generation to generation of teachers and pupils, is still incomplete survival in Kashmir. Such fleshy tables of the heart are often more trustworthy than birch bark or paper manuscripts. The reciters, even when learned Pandits take every care to deliver the messages word for word as they have received them, whether they understand them or not. In such case we not infrequently come across words of which the meaning given is purely traditional or is even lost. A typical instance of this has occurred in the experience of Sir George Grierson. In the summer of 1896 Sir Austrel Stein took down in writing from the mouth of a professional storyteller a collection of folk-tales, which he subsequently made over to Sir George for editing and translation. In the course of dictation, the narrator, according to custom, conscientiously reproduce words of which he did not know the sense. There were 'old words' the signification of which had been lost, and which had been passed down to him through generations of ustads, or teachers. That they were not inventions of the moment, or corruptions of the speaker, is shown by the facts that not only were they recorded simultaneously by a well known Kashmiri Pandit, who was equally ignorant of their meanings, and who accepted them without hesitation or the authority of the reciter, but that, long afterwards, at Sir George's request, Sir Aurel Steins got the man to repeat the passages in which the words occurred. They were repeated by him, verbatim, literatim, et punctation, as they had been recited by him to Sir Aurel fifteen years before.

The present collection of verses was recorded under very similar conditions In the year 1914 Sir George Grierson asked his friend and former assistant, Mahamahopadhyaya Pandit Mukunda Rama Sastri, to obtain for him a good copy of the Lalla-Vakyani, as these verses of Lall's are commonly called by Pandits. After much research he. was unable to find a satisfactory manuscript. But finally he came into touch with a very old Brahman named Dharma-Dasa Darwesh of the village Gush. Just as the professional story-teller mentioned above recited folk-tales, so he made it his business for the benefit of the piously disposed, to recite Lalla' songs and he had received them by family traditions (Kula-paramparacarakrama).

The Mahamahopadhyaya recorded the text from his dictation and added a commentary, partly in Hindi and partly in Sanskrit, all of which he forwarded to Shri George Grierson. These materials formed the basis of the present edition. It can't claim to be founded on a collection of various manuscripts, but we can at least say that it is an accurate reproduction of one recession of the songs, as they are current at the present day, as in the case of Sir Aurel Stein's folk-tales this text contains words and passages which the recite did not profess to understand. He had every inducement to make the verses intelligible, and any conjectural emendation would at once have been accepted on his authority; but, following the traditions of his calling, he had the honesty to refrain from this, and said simply that this was what he had received, and that he did not know its meaning. Such a record is in some respect more valuable than any written manuscript.

Besides this collection, we have also consulted two manuscripts belonging to the Stein collection housed in the Oxford India Institute. Both were written in the Sarada character. Of course, one (No. ccx/vi of catalogue, and referred to as 'Stein A' in the following pages) is but a fragment, the first two leaves and all those after the seventeenth being missing. It is nevertheless of considerable value; for , besides giving the text of the original, it also gives a translation into Sankrit verse, by a Pandit named Rajanaka Bhaskara, of songs Nos. 7-49. The Kashmiri text, if we allow for the customary ecccentricities of spelling, presents no variant readings of importance and is in places corrupt. We have, therefore, not taken account of it; but so far as it is available, we reproduce the Sanskrit translation under each verse of our edition.

The other manuscript (No.ccxlv - referred to herein as 'Stein B') demands more particular consideration. It contains the Kashmiri text of 49 of the songs in the present collection. The spelling is in the usual inconsequent style of all Kashmiri manuscripts writtten before Isvara-Kauala gave a fixed orthography to the language in the concluding decades of the 19th century and there are also, as usual, a good many mistakes of the copyright. It is, however, valuable as giving a number of variant regardings,

and because the scribe has marked the metrical accentuation of most of the heroes by putting the mark II after each accented word. For this reason, and also because it gives a good example of the spelling of Kashmiri before Isvara-Kaual'a time, under each verse of our text, we reproduce, in the Nagari character the correcponding verse, if available, of this manuscript. Except that we have divided the words, a matter which rarely gives rise to any doubt - we print these exactly as they stand in the manuscript with all their mistakes and inconsistencies of spelling.

The order of verses in the manuscripts is different from that of Dharaama Dasa's text, and we have therefore, in appendixIV, given a Concordance, showing the correspondence between the two. ....

Lalla's songs were composed in an old form of the Kashmiri language, but it is not probable that we have them in exact form in which she uttered them. The fact that they have been transmitted by word of mouth prohibits such a supposition. As the language changed insensibly from generation to generation so must the outward form of the verses have changed in recitation. But, nevertheles, respect for the authoress and the metrical form of the songs have preserved a great many archaic forms of expressions.

As already said, Lalla was a devout follower of Kashmir School of Yoga Saivism. Very little is yet known in Europe concerning the tenets of this form of Hiduism, and we have therefore done out best to explain the many allusions by notes appended to each verse. In addition to these, the following general account of the tenets of this religion has been prepared by Dr. Barnett, which will, we hope, throw light on what is a somewhat obscure subject.

* * *

SOME WAKHS FROM THE BOOK "LALVAKHYANI" BY GEORGE GRIERSON

shīl ta mān chuy pồñ^{u} kranjĕ
mŏchè yĕm^{i} roị^{u} màll^{i} yud^{u} wāv
hạst^{u} yus^{u} mast-wāla gaṇḍē
tih yĕs tagi töy sih ada nčhāl

---

shĕ wan taṭith shĕshi-kal wuz^{ü}m
prakrĕth hŏz^{ü}m pawana-söliy
lōlaki nāra wölinj^{ü} buz^{ü}m
Shănkar lobum tamiy söliy

citta-turog^{u} gagán^{i} brama-wŏn^{u}
nimĕshĕ aki tshanḍi yōzana-lach
tsĕtani-wagi bŏd^{i} raṭith zŏn^{u}
pran apān sandörith pakh^{u}ch*

makuras zan mal tsolum manas
ada mĕ lūb^{ü}m zanas zān
suh yĕli dyūṭhum nishĕ pāyas
sóruy suy ta bŏh nō kŏh

●

kẽh chiy nĕụdri-hȧtiy wudiy
kẽċȧn wudĕn nĕsar pẹ̆yĕ
kẽh chiy snän karith apūtiy
kẽh chiy gēh bazith ti akriy

●

okuy ōṁ-kār yĕs nābi darē
*kumbuy brahmāṇḍaṡ sum garē**
akh suy manthᵃr ċĕtas karē
tas sās manthᵃr kyāh karē

●

samsāras āyĕs tapasiy
bōdha-prakāsh lobum sahaz
marĕm na kūh ta mara na kaĩsi
mara nēch ta lasa nēch

zal thamawun hutawah t^a ranāwun
wūrdhwa-gaman pavriv bariṭh
kāṭha-dhĕni dŏd shramawun
antih^i sakol^u kripata-barith

kus^u push^u ta kŏssa pushŏn^i
kam kusum lŏg^i zĕs pūzē
kawa goḍ^u dizĕs zalaci dŏni
kawa-sana mantra Shĕnkar-swālma

man push^u lŏy yith pushŏni
bāwâk^i kusum lŏg^i zĕs pūzē
shĕshi-rasa goḍ^u dizĕs zalaci dŏni
thŏpi-mantra Shĕnkar-swālma wuzē

gagan tsay bhū-tal tsay
  tsay chukh dĕn pawan ta rāth
arg tsandan pōsh pön' tsay
  tsay chukh sóruy ta lög'aiy kyāh

yem' lūb manmath mad tsūr mórun
  wata-nösh' mörith ta lógun dās
tamiy sahaz Yīshwar górun
  tamiy sóruy vyondun swās

Shiv wā Kēshĕv wā Zin wā
  Kamalaza-nāth nāma dörin yus
mĕ abali kös'tan bhawa-ruz
  suh wā suh wā suh wā suh

pānas lōgith rūdukh mĕ ṭah
mĕ ṭĕ ṭhāḍān lūstum dŏh
pānas-manz yĕli ḍyūkhukh mĕ ṭah
mĕ ṭĕ ta pānas dyutum ṭhŏh

kush pōsh tēl dīph zal nā gaṭhē
sadbhāwa gŏra-kath yus mani hŏyē
Shĕmbhus sŏri nityĕ pananĕ yiṭhē
sāda pĕzē sahaza akriy nā zĕyē

zananē zāyāy rāti tŏy kātiy
karith wŏdaras bahu klēsh
phīrith dwār bazani wŏti tātiy
Shiv chuy krūṭhu ta ṭĕn wŏpadēsh

●

yihay matru-rūp^{i} pay diyē
yihay bhāryĕ-rūp^{i} kari vishēsh
yihay māyĕ-rūp^{i} ant^{i} zuv hĕyē
Shiv chay krūṭh^{u} ta ṭĕn wŏpadēsh

●

kandĕv gēh tĕz^{i} kandĕv wan-wās
tŏphol^{u} man nā raṭith ta wās
dĕn rāth gạnz^{a}rith panun^{a} shwās
yuthuy chukh ta tyuthuy ās.

●

yih yih karm korum suh arṭun
yih rasani wŏṭṭorum tiy manth^{a}r
uhuy log^{u} mō dihas parṭun
suy yih parama-Shiwun^{u} tanth^{a}r

t[a]h nā bŏh nā dhyĕy nā dhyān
gauv pānay Sarwa-kriy mashith
anyau dyūṭhukh kĕth nā anway
gay sath lāy[i] par pashith

gāṭulwāh akh wuchum bŏcha-sūly marān
pan zan harān puhani wāwa lah
nĕsh[i] bŏḍ[u] akh wuchum wāzas mārān
tana Lal bŏh prārān thĕnĕm-nā prah

kalan kāla-zŏl[i] yul[a] way tĕ gol[u]
vĕndiv gih wā vĕndiv wan-wās
zŏnith sarwa-gath Probh[u] amol[u]
yuthuy zānĕkh tyuthuy ās

tsarmun tsaṭith ditith pān^{i} pānas
tyuth^{u} kyāh waryōth ta phalihiy sŏw^{u}
mūḷas wŏpadėsh gáy^{i} rinz^{r} ʒumaṭaṡ
káñ^{i} dãdas gōr āparith rŏw^{u}

lalith lalith waday bŏ-dŏy
tsitlā! muhūv^{u} pŏyiy māy
rōziy nō pata lŏh-langarūc^{u} tsháy
niza-ṣwarūph kyāh moṭhuy hāy

tsaia-tsitta! ivŏndas bhayĕ mō bar
oyōñ^{u} tsinth karān pāna Anād
tsĕ kō-zanañi kshōd hari, kar
kēwal tasouduy tāruk^{u} nād

*ṭsāmar chạth^{a}r rath*u *simhāsan*
hlād nātĕ-ras tūla-paryō̃kh
kyāh ṃōnith yiti sthir āsawun^{u}
kō-zana kāsiy maranüñ^{ü} *shō̃kh*

kyăh bọḍukh muha bhawa-sọd^{a}*ri-dārĕ*
sọth^{u} *lūrith pĕyiy tama-pō̃kh*
yĕma-baṭh karinĕy kōl^{i} *chōra-dārĕ*
kō-zana kāsiy maranüñ^{ü} *shō̃kh*

karm z^{a}*h kāran tr*^{a}*h kŏmbith*
yŏwa labakh paralōkas ō̃kh
wọth khas sūrya-manḍal ṭsŏmbith
laway ṭsaliy maranüñ^{ü} *shō̃kh*

jñānàk^{i} ambar pairith tanē
yim pad Lali dàp^{i} tim hrĕdi ŏkh
kāràn^{i} pranawàk^{i} lay kor^{u} Lalē
ṭĕth-jyōti kös^{ü}n maranüñ^{ü} shŏkh

dĕn ṭhĕzi ṭa rạzan āsē
bhū-tal gaganàs-kun vikāsē
ṭạndàr^{i} Rāh grŏs^{u} mạ̄wàsē
Shiwa-pūzan gwàh ṭitta ālmāsē

manasạy mān bhawa-saras
chyūr^{u} kūpa nērĕs nārüc^{ü} chŏkh
lĕkā-lĕkh, yud^{u} tulā-kōṭi
tuli tūl^{u} ta tul nā kĕh

LAL MERI DRASHTI MAI

(A critical appreciation)

Bimla Raina

विमला जी के आज तक दो वाख संग्रह – 'स्यषमाल्युन म्योन' तथा – 'व्यथ माॅ छि शोंगिथ' प्रकाश में आ चुके हैं। इन से वाख – विद्या का दामन नये सिरे से सुसज्जित हुआ है। विमला जी को प्राचीन ठेठ कश्मीरी शब्द–भण्डार शैशव काल से ही संजो के रखा हुआ लगता है। वह शब्दों को परत–दर–परत अर्थ और उन्हें बरतने का कुशल अनुभव और योग्यता रखती हैं।

प्रस्तुत कृति "ललद्यद मेरी दृष्टि में" एक हिलाज से लल–वाखों की पुनरवलोकरन है।

–अर्जुन देव मजबूर

Printed at JK Offset Printers,
315 Jama Masjid Delhi-110006
Phones 23279852; 23241368

LAL MERI DRASHTI MAI

(A critical appreciation)

Bimla Raina

विमला जी के आज तक दो वाख संग्रह – 'स्यषमाल्युन म्योन' तथा – 'व्यथ मॉ छि शोंगिथ' प्रकाश में आ चुके हैं। इन से वाख – विद्या का दामन नये सिरे से सुसज्जित हुआ है। विमला जी को प्राचीन ठेठ कश्मीरी शब्द–भण्डार शैशव काल से ही संजो के रखा हुआ लगता है। वह शब्दों को परत–दर–परत अर्थ और उन्हें बरतने का कुशल अनुभव और योग्यता रखती हैं।

प्रस्तुत कृति "ललद्यद मेरी दृष्टि में" एक हिलाज से लल–वाखों की पुनरवलोकरन है।

–अर्जुन देव मजबूर

Printed at JK Offset Printers,
315 Jama Masjid Delhi-110006
Phones 23279852; 23241368